राष्ट्रऋषि बाबा साहब अम्बेडकर

- हनुमान सिंह



चौदहवाँ रतन

बाबा साहब के दादा मालोजी का गाँव 'आम्बावड़े' रत्नागिरि जिले के एक कस्बे मण्डनगढ़ से पाँच मील दूर था। इस ग्राम के नाम से सभी लोग उनके परिवार को 'आम्बावाडेकर' उपनाम से पुकारा करते थे। उनके पूर्वज अपने गाँव में धार्मिक त्यौहारों के समय देवी देवताओं की पालकियाँ उठाने का काम करते थे, जो उनके पारिवारिक सम्मान का द्योतक था। बाबा साहब के विद्यालयी जीवन में एक ब्राह्मण अध्यापक का उन पर अत्याधिक स्नेह था। वे उन्हें मध्यान्ह में अपने साथ लाया भोजन देते थे। उनको लगता था कि आम्बावाडेकर उपनाम बोलने में अटपटा लगता है। अतः भीमराव को अपना नाम 'अम्बेडकर देते हुए विद्यालय अभिलेखों में भी परिवर्तन करवा दिया।

बाबा साहब के पिता रामजी सकपाल थे। सेना की अनिवार्य शिक्षा के कारण अपने पिता मालोजी के साथ रहते हुए ये भी शिक्षित हो गये थे। पूना के नॉर्मल स्कूल से शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर ये चौहद वर्ष तक सैनिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक रहे। मराठी भाषा पर उनका अधिकार था तथा अंग्रेजी भी जानते थे, एवं गणित में प्रवीण थे। ये कबीर पंथी होने के कारण मांस–मदिरा का सेवन नहीं करते थे। क्रिकेट व फुटबाल में उनकी रूचि थी। महात्मा फुले के प्रशंसक, समाज–कल्याण के कार्यो में सक्रिय, स्वभाव से गम्भीर एवं अनुशासक प्रिय थे। आप सूबेदार मेजर के पद से सेवानिवृत्त हुए।

बाबा साहब की माता भीमा बाई थी। इनका पीहर मुम्बई के निकट थाणे जिले के 'मुरबाड़' गाँव में था। इसी से परिवार का उपनाम था मुरबाड़कर। इनका परिवार धनी, धार्मिक तथा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त था क्योंकि उनके पिता और छः चाचा सेना में सूबेदार मेजर थे, जो उस समय ब्रिटिश सेना में किसी भारतीय को प्राप्त हो सकने वाला सर्वोच्य पद था। इनका परिवार भी कबीर पंथी था। ऐसी कौटुम्बिक पृष्ठभूमि वाली भीमाबाई सुंदर व्यक्तित्व वाली मिलनसार, शांत व गम्भीर स्वभाव वाली धार्मिक महिला थी।

उपरोक्त वर्णन से ध्यान में आता है कि बाबा साहब का अनुवांशिक प्रारब्ध अत्यंत प्रबल था और दिव्य अवतरण की आधार भूमि अत्यंत उर्वर थी। इसके साथ पितृ–पुरूषों की साधना का सुयोग था। रामजी सकपाल के एक चाचा संयासी हो गये थे। जब रामजी सकपाल अपने परिवार सहित महू (इन्दौर) छावनी में रहते थे उस समय की घटना है। संयासी चाचा अपनी जमात के साथ वहाँ से निकल रहे थे। उस समय परिवार की एक स्त्री ने, जो पास ही नदी में कपड़े धो रही थी, उन्हें देखकर पहचान लिया। उसने दौड़कर घरवालों को सूचना दी। परिवार के सभी सदस्य संतों के विश्राम स्थल पर गये, उनका आदर–सत्कार किया तथा उनसे प्रार्थना की कि वे पधारकर घर को पवित्र करें। उन्होंने सन्यास की मर्यादानुसार घर आने से मना कर दिया किन्तु रामजी व भीमाबाई को आशीर्वाद दिया कि "अपने वंश की तीन पीढ़ियों में तीन पुरूष सन्यासी बन गये। घोर तपस्या कर तीनों ने भगवान से एक ही वर मांगा है कि 'हे भगवान! हमारे वंश में एक ऐसा पुत्र उत्पन्न कीजिए जो हमारे कुल का नाम सर्वत्र रोशन करें और अपने बंधुओं तथा धर्म के बुरे दिन समाप्त कर जाति और धर्म को प्रकाशित करें। भगवान ने वह वर दे दिया है। तुम्हारे यहाँ एक ऐसा पुत्र जन्म लेगा जो तुम्हारे परिवार को ही नहीं तुम्हारी समस्त जाति और देश को भी पवित्र कर देगा।"

आशीर्वाद के अनुरूप 14 अप्रैल, 1891 (चैत्र शुक्ल सप्तमी सं. 1948) को महू छावनी में भीमाबाई की कोख पवित्र करने जिस शिशु का अवतरण हुआ वह इस दम्पत्ति की चौदहवीं संतान थी। उसका नाम रखा गया भीम। जिस प्रकार समुद्र मंथन से चौदहवाँ व अंतिम रतन 'अमृत' प्राप्त हुआ था, उसी प्रकार यह शिशु भी बड़ा होकर स्वयं हलाहल पीकर अन्यों को अमृत बाँटने वाला शंकर सिद्ध होने वाला था।

अस्पृश्यता के मर्मान्तक अनुभव और प्रतिक्रिया

हिन्दु समाज के उत्कृष्ट तत्व ज्ञान के विपरीत समाज में विकृत रूढ़ियाँ व अमानवीय आचरण तत्कालीन समाज में व्याप्त था। दीर्घकालिक बाहरी आक्रमणों की श्रृंखला को झेलते, लड़ते समाज में सुधार प्रक्रिया शिथिल हुई। समय–समय पर समाज सुधारकों ने इसके परिवर्तन का प्रयत्न अपने जीवन काल में किया किन्तु सतत् व समग्र रूपान्तरण का आन्दोलन न होने के कारण कुरीतियों को जड़–मूल से समाप्त करना सम्भव नहीं हुआ। समाज के पीड़ित, दलित वर्ग के अधिसंख्य लोगों ने इसे नियति मानकर स्वीकार कर लिया, अतः संगठित विरोध का वातावरण भी नहीं था। ऐसी परिस्थितियों में बाबा साहब का जन्म हुआ था। उनकी विलक्षणता यह है कि अमानवीय व्यवहार की प्रत्येक चोट उन्हें पीड़ा पहुँचाती है, आक्रोश उत्पन्न करती है, प्रश्नों के घेरे बनाती है और परिवर्तन की आकांक्षा उत्पन्न करती है। ये अनुभव किसी कालखण्ड में सीमित नही है, पूरे जीवन काल में पग पग पर इनका कुट अनुभव होता है और उसी मर्मान्तक पीड़ा में से समाज को तारने की तैयारी और पुख्ता होती है।

उनका परिवार अत्यंत संस्कारी और शिक्षित था। बाबा साहब स्वयं कहते हैं– ''हमारा परिवार निर्धन हुआ तो भी उसका वातावरण किसी प्रगतिशील सुशिक्षित परिवार को शोभा दे सके ऐसा था। हमारे पिता इस बात को लेकर सदैव सजग रहते थे कि हममें विद्याध्ययन की रूचि जाग्रत हो तथा हमारा चरित्र उज्जवल बने। भोजन से पूर्व हमें पूजाघर में बैठाकर हमसे अभंग, दोहे, भजन आदि कहलवाया करते थे। पिता कबीर पंथी थे, अतः शाकाहारी थे, मदिरा वर्जित थी।''

ऐसे सात्विक परिवार के बालक को अस्पृश्यता का अनुभव केवल इस कारण करना पड़े कि उसने अमुक जाति में जन्म लिया है, इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी?

सैनिक छावनी में रहते सब अच्छा था पिताजी की सेवानिवृत्ति के बाद जब परिवार सतारा आ गया तब पांच वर्ष के बाल मन पर अस्पृश्यता के कटु अनुभवों के अमानवीय आघात होने लगे। उनके बाल काटने को नाई तैयार नहीं था, बड़ी

बहन बाल काटती थी। बाल मन ने पहला प्रश्न किया– ''सतारा में इतने नाई हैं, वे हमारे बाल क्यों नहीं काटते?'' यह यक्ष प्रश्न बहन से नहीं था, उस समाज से था जिसके वे अंग माने जाते थे।

पिताजी को अकाल राहत कार्य की मजदूरी बांटने का काम गोरे गाँव में मिला था। भीम, भाई आनंदराव और बहिन का एक छोटा बच्चा उनसे मिलने के लिए सतारा से निकले। वे पाडाली रेल्वे स्टेशन से रेलगाड़ी में सवार हुए और मसूर स्टेशन पर उतर गये। उन्होंने अपने आगमन का सूचना पत्र भेजा था किन्तु वह मिल नहीं पाया अतः उन्हें लेने के लिए कोई नहीं आया। 'हम महार हैं' सुनकर स्टेशन मास्टर भी पीछे हट गया, किन्तु दयावश एक गाडीवान को तैयार कर दिया। गाड़ी कुछ दूर चली कि गाड़ीवान ने बातचीत में ज्यों ही उनकी जाति का नाम सुना, जैसे उसे बिच्छू ने डंक मारा हो, उछल कर गाड़ी से नीचे कूदा, बैल खोले और गाडी को आगे से ऊपर कर दिया, परिणामतः तीनों बालक सामान सहित लुढ़ककर धरती पर आ गये। बड़ी अनुनय–विनय के बाद गाड़ीवान दुगुने किराये पर इस शर्त के साथ चलने को तैयार हुआ कि गाड़ी वह नहीं चलायेगा। आनंदराव चालक के स्थान पर बैठा, गाड़ीवान साथ–साथ पैदल चलता रहा। रास्ते में एक गंदे नाले के पास कहा–'रोटी खा लो, यह पानी है, आगे तुम्हें कोई पीने को पानी भी नहीं देगा।' दूसरे दिन दोपहर में गोरे गाँव पहुँचे। बाद में इस अनुभव के घावों से मर्मान्तक टीस निकली–''इस प्रवास में अपने जीवन में पहली बार अनुभव मिला कि हम अछूत हैं, हमें निम्न कोटि का माना जाता है।'' इसके बाद के अनुभव दर अनुभव तो इस घाव को कुरेदने, हृदय में आक्रोश और परिवर्तन की पीड़ा को तीव्रतर करने वाले ही थे।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् ही एक पीड़ादायी अनुभव और आया। भीम विद्यालय जाते समय मार्ग के एक सार्वजनिक कुँए से पानी निकालकर कर पी लेता था। तथाकथित उच्च जाति के लोगों ने एक दिन उसे देख लिया। उसे पकड़कर पीटा और आगे से ऐसा न करने की शर्त पर छोड़ा। 'मैं प्यासा होने के उपरान्त भी पानी नहीं पी सकता।' यह उस समाज का व्यवहार था जो पक्षियों के लिए पानी के परिण्डे बाँधता है, पशुओं के पेयजल हेतु व्यवस्था को पुण्य समझता है।

विद्यालय में किये जाने वाले व्यवहार का बालमन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा? कल्पना कीजिए कि विद्यार्थी कक्षा कक्ष में प्रवेश नहीं कर सकता, अन्य विद्यार्थियों के साथ दरी–पट्टी पर नहीं बैठ सकता, बाहर बरामदे में दरवाजे के पास अपने साथ लाये टाट पर बैठता है। टाट इसलिए कि अलग पहचाना जा सके और उस टाट को विद्यालय में नहीं रख सकते क्योंकि विद्यालय अपवित्र हो जाएगा, उसे नित्य अपने साथ लाना–ले जाना। कोई अन्य छात्र या चपरासी टोंटी खोलेगा तो ही पीने को पानी मिलेगा अन्यथा प्रतीक्षा करना या प्यासा रहना। मुम्बई

का प्रसिद्ध एलफिंस्टन हाई स्कूल भी इस व्यवहार से मुक्त नहीं था। राजकीय विद्यालय होते हुए भी विद्यालय का वातावरण जातिवाद और छुआछूत की दुर्भावनाओं से विषाक्त था। बाहर के विस्तृत अपमानजनक जगत का ही लघु प्रतिरूप विद्यालय था। एक दिन कक्षाध्यापक ने श्यामपट्ट पर एक प्रश्न हल करने के लिए भीम को बुलाया। तत्क्षण ही कक्षा में शोर मच गया। तथाकथित सवर्ण छात्र अपने भोजन पात्र श्यामपट्ट के पीछे रखते थे। भीम के श्यामपट्ट छूने से उनका भोजन दूषित हो जाएगा, इस भय से वे रूको!रूको!!चिल्लाते हुए श्याम पट्ट की ओर झपटे और इससे पहले कि भीम श्यामपट्ट के निकट पहुँचे या श्यामपट्ट को छुए, सबने अपने भोजन पात्र अपने कब्जे में कर लिये। बालक को सरल मना, भगवान का स्वरूप माना जाता है, ये निश्चित रूप से इस जहर को अपने घर से लाये होंगे, और ये ही दृढ़मूल विकार बाद में व्यवहार में बिना विचारे परिलक्षित हुए होंगे। भोजन पात्रों को अपवित्र होने से बचाने की हड़बड़ाहट में होने वाली धातु–ध्वनियाँ बच्चों के अभिभावकों द्वारा घरों में या गलियों में तथाकथित अस्पृश्यों के लिए की जाने वाली कर्कश आवाजों की तुलना में कम कर्ण–कटु नहीं थीं।

अभी भीम को विद्यालयी जीवन के निष्ठुरतम् घाव प्राप्त करने थे। घाव इतने गहरे थे कि शेष जीवन में उसने उन्हें प्रबलतम घृणा के साथ स्मरण किया। हाईस्कूल में अध्ययन के दौरान भीम व बड़े भाई आनंद ने द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत लेने की इच्छा प्रकट की किन्तु ब्राह्मण शिक्षक ने उन्हें संस्कृत पढ़ाने से मना कर दिया, परिणाम स्वरूप उन्हें अपनी इच्छा के विरूद्ध फारसी पढ़ना पड़ा। बाद में अम्बेड़कर जी ने कहा ''मुझे संस्कृत भाषा पर अत्यंत अभिमान है और मैं चाहता था कि संस्कृत का अच्छा विद्वान बनूँ पर ब्राह्मण अध्यापक के संकुचित दृष्टिकोण से मुझे संस्कृत भाषा से वंचित रहना पड़ा।'' बाद के वर्षो में आंशिक रूप से स्वयं एवं कभी–कभी कुछ पण्डितों की सहायता से संस्कृत का अध्ययन करके अम्बेड़कर जी स्वयं पण्डित बन गये।

महाविद्यालय में भी इस वातावरण ने पीछा नहीं छोड़ा। महाविद्यालय का ब्राह्मण होटल मालिक उन्हें चाय–पानी नहीं देता था।

उच्च विद्या विभूषित बाबा साहब महाराजा के निमंत्रण पर बड़ौदा गये ताकि अनुबंधानुसार दस वर्ष सेवा दे सकें। महाराजा की आज्ञा के बाद भी कोई उन्हें लेने स्टेशन पर नहीं आया। इसके पीछे अहंकार था कि ''महार की अगवानी करने कौन जाए?'' बड़ौदा में यह समाचार जंगल में आग की तरह फैल गया था कि एक महार युवक नौकरी के लिए आ रहा है। अम्बेड़कर जी व उनके भाई को कोई भी होटल या वसति गृह जगह देने को तैयार नहीं था। अंततः अपनी पहचान छुपाकर एक पारसी धर्मशाला में शरण ली।

ऐसे अस्पृश्यता के सैंकड़ों मर्मान्तक अनुभवों के बाद भी, अपने अपमान के विष को कण्ठ में ही रोककर, वाणी से समता–समरसता–बंधुता का ही अमृत उंडेलने वाले महामानव बाबा साहब थे। अपने जीवन के अंतिम अध्याय तक बाबा साहब समाज को सुधारने का तर्क शुद्ध आन्दोलन ही नहीं चलाते, परिवर्तन का पर्याप्त समय भी देते हैं। वे प्रारम्भ सत्याग्रह से करते हैं, क्योंकि ''सत्याग्रह की सफलता उसे करने वाले व्यक्ति के आत्म–विश्वास पर निर्भर होती है और आत्म–विश्वास ज्ञान और इस विश्वास से आता है कि वह जो कर रहा है, वह पूर्ण सत्य और नैतिक है।'' और बाबा साहब की दृष्टि में ''जो कुछ भी बंधुभाव और भाईचारे के लिए है, वह सही है।''

''यदि आप स्वार्थी लक्ष्यों को लेकर चलते हैं तो आप समुदाय के बारे में नहीं सोच सकते, आप लोगों को बाँटने के बारे में ही सोचेंगे। लेकिन यदि आपको समानता में भरोसा है तो आप ऐसा नहीं करेंगें। आप उन्हें जोड़ने की कोशिश करेंगें। इन सिद्धान्तों के आधार पर जहाँ समानता है, वहाँ सामुदायिकता है और जहाँ सामुदायिक भावना है, वहाँ सत्य है। इन सिद्धान्तों की प्रतिस्थापना का कोई भी कदम सत्याग्रह है।''

यह सत्याग्रह क्यों करना? बाबा साहब कहते हैं कि ''ऐसा नहीं है कि छुआछूत से सिर्फ (तथाकथित) अछूतों को नुकसान हुआ है, इससे (तथाकथित) सवर्णों को भी नुकसान हुआ है। और सबसे ज्यादा नुकसान राष्ट्र को हुआ है।....यदि अछूत इस कलंक से बाहर निलकर देश के निर्माण में योगदान देते हैं तो देश की तरक्की में ही हाथ बँटाएँगे। इसलिए छुआछूत की समाप्ति का आन्दोलन सही अर्थों में देश के निर्माण का आन्दोलन है।''

बाबा साहब के पूरे जीवन में हम देखते हैं कि छुआछूत के अनुभवों को वे यथास्थितिवादी की तरह स्वीकार नहीं करते, केवल आक्रोश या पीड़ा प्रकट करके भी नहीं रूकते, वे परिवर्तन का मार्ग सुझाते हैं, स्वयं अगवा बनते हैं तथा ''शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो'' का मार्ग सुझाते हैं और घोषणा करते हैं कि ''ईमानदारी से कहूँ तो अस्पृश्यता इतनी अमानवीय है कि हम में से कई इसे हटाने के लिए अपने प्राण भी दे सकते हैं। ''

जो इस अमानवीय दृश्य को बदलने के लिए अपना बलिदान तक देने की सिद्धता दिखाते हैं, फिर भी उनकी भूमिका प्रारम्भ में 1935 तक कैसी थी यह देखने, समझने लायक है। 6 दिसम्बर 1956 को बाबा साहब का देहान्त हुआ, उससे पूर्व विजयादशमी 14 अक्टूबर, 1956 को उन्होंने बौद्ध दीक्षा ली, इतनी दीर्घ अवधि तक हिन्दू समाज को आत्मालोचन का अवसर देना–यह रेखांकित करने वाला तथ्य उनकी महानता का मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखना चाहिए।

"'भीम'' से 'भीष्म प्रतिज्ञा' तक

भीम मुश्किल से दो वर्ष का था जब उसके पिता सेना से सेवानिवृत हुए और वे महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र स्थित देपोली ग्राम में आ गये। यहाँ पाँच वर्ष की अवस्था में भीम का विद्यालय प्रवेश हुआ। सूबेदार रामजी सकपाल को शीध्र ही सतारा के सैनिक निवासों में कार्य प्राप्त हो गया अतः परिवार भी वहाँ आ गया। सतारा में कोई भी विद्यालय उनके पुत्रों को प्रवेश देने को तैयार नही था। रामजी ने एक सैनिक अधिकारी को अपनी व्यथा सुनाई। उनके प्रयत्न से कैम्प स्कूल में बच्चों को प्रवेश मिल गया। विद्यालय के विषाक्त वातावरण के उपरान्त भी भीम की जिजिविषा अदम्य थी क्योंकि पिता का स्वप्न था कि वे पढ़–लिखकर योग्य व्यक्ति बनें। सैनिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक के रूप में दीर्घकालीन अनुभव के साथ अपने अविरत पाठ–गीतों एवं उसके व्याख्या–विवरण से रामजी सकपाल ने मराठी भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, अतः वे आनंद एवं भीम को शब्दों के उपयुक्त प्रयोग विधि का शिक्षण करने में निष्णात् थे। उन्होंने अंग्रेजी का भी अध्ययन किया था और अपने बच्चों को आसानी व विश्वास के साथ पुस्तकों के अनुवाद की विधि पढ़ा सकते थे। गणित तो उनकी रूचि का विषय था ही, साथ ही वे अपने पुत्रों के लाभार्थ गोपालकृष्ण गोखले द्वारा लिखित गणित की पुस्तक की कुंजी का कार्य करने वाली एक पुस्तिका रखते थे। भीम की छः वर्ष की आयु में ही माता का साया सिर से उठ गया था। अतः पिता ही एकमात्र उनकी चिंता करने वाले थे। विमाता द्वारा अपनी माँ के गहने पहनना भीम को असह्य लगा, घर छोड़कर मुम्बई मजदूरी हेतु जाने का असफल प्रयत्न किया ओर परिणामतः जिस निष्कर्ष पर पहुँचा, उन्हीं के शब्दों में–''ऐसा निर्णय जिसने मेरे जीवन को पूर्णतया नवीन मोड़ प्रदान कर दिया। मैंने निश्चय किया कि मैं अपने कर्त्तव्य–विमुख स्वभाव को त्याग दूँगा तथा मैं कठोर परिश्रम से अध्ययन करूँगा एवं जितना सम्भव हो, शीघ्रता से अपनी परीक्षाएँ उत्तीर्ण करूँगा, ताकि मैं अपनी आजीविका स्वयं कमा सकूँ तथा अपने पिता पर आश्रित न रहूँ।''

इस दिन के पश्चात् भीम ने सभी अवांछित आदतें तथा हरकतें छोड़ दी और

अपनी पढ़ाई के प्रति इतना सजग हो गया कि उसके अध्यापकों ने, जो प्रारम्भ में उसकी तरफ से निराश हो गये थे, उसके पिता को उसे हर सम्भव अच्छी शिक्षा दिलाने की सलाह दी।

गोरेगाँव में भण्डार पाल की नौकरी छूटने के पश्चात् काम की तलाश एवं बच्चों की शिक्षा के लिए रामजी सकपाल मुम्बई आ गये। मुम्बई में लोअर परेल की चाल में, जहाँ अधिकतर मिल श्रमिक रहते थे, उन्होंने किराये पर कमरा लिया। सर्वप्रथम उन्होंने अपने पुत्रों का प्रवेश मराठा हाई स्कूल में करवा दिया। इस समय तक भीम ने अपने अध्ययन में पर्याप्त प्रगति कर ली थी। अपने पिता के मार्गदर्शन में भीम ने 'हावर्ड्स इंग्लिश रीडर' तथा तरखाड़कर की तीन प्रसिद्ध अनुवाद पुस्तकों का पारायण कर लिया था। भीम अनुवाद अभ्यासों में बहुत तर्क संगत अवस्था में था तथा उसने अपने अनेक सहपाठियों की तुलना में अच्छी स्थिति अर्जित कर ली थी। उनके पिता द्वारा सिखायी गई अनुवाद की एक विशेष पद्धति ने, जिसका उन्होंने बाद में एक बार गौरवपूर्ण उल्लेख किया था, भीम को समानार्थक शब्दों को स्मरण करने के योग्य बनाकर उसकी शब्द–सम्पदा में वृद्धि की तथा ऐसी नींव रखी जिस पर आगे चलकर उन्होंने अपनी प्रतिभा भारत के प्रथम श्रेणी के लेखक के रूप में स्थापित की।

तिलक एवं सावरकर की तरह भीम ने भी अपनी तरूणावस्था में ही पढ़ने की धुन विकसित कर ली। उनकी पुस्तकें पढ़ने की लालसा सुरसा मुख की तरह थी और पुस्तकों की उपलब्धता सहज, सरल नहीं थी। किन्तु अल्पसाधन होते हुए भी रामजी सकपाल ने भीम को यथासम्भव पुस्तकें उपलब्ध करवाने का प्रयत्न किया। इसके लिए कई अवसरों पर, मुम्बई में ब्याही अपनी दोनों पुत्रियों से उधार लिया, यहाँ तक कि कई बार पेंशन राशि प्राप्त होने तक उनके गहने गिरवी रख दिये।

कुछ महिनों के पश्चात् मुम्बई के प्रमुख विद्यालयों में गिने जाने वाले एलफिंस्टन हाई स्कूल में भीम को प्रवेश दिलवाया गया। भीम यद्यपि कठिन परिश्रम से अध्ययन करता था किन्तु परेल की पुरानी चाल के एक कक्षीय गृह में अध्ययन की सुविधा का कोई अवसर नहीं था। शिक्षण सहायता हेतु अध्यापक रखना तो स्वप्न से भी परे की बात थी। कमरा घरेलू सामानों से भरा था। सिर के ऊपरी हिस्से पर तथा कोने में जलाने की लकड़ी जमायी गई थी, और एक कोने में चूल्हा था। भीम जिस गुदड़ी पर सोता था उसके सिर के समीप दीवार से सटाकर रखा सिल बट्टा पड़ा रहता था और पैरों की तरफ बकरी बंधी रहती थी। भोजनालय, अतिथि गृह, शयन कक्ष, अध्ययन कक्ष सब कुछ इसी एक कक्ष में समाहित थे।

जो भी था, इसी में से मार्ग निकालना था। पिता–पुत्र दोनों ही परिस्थिति को कोसते नहीं बैठे, मार्ग निकाला। रामजी सकपाल का यह मार्ग निराला था। जब तक गृहस्थी की खटपट चलती है, अध्ययन संभव नहीं अतः उन्होंने भीम को शीघ्र सोने के लिए तैयार किया। भीम भोजन करके जब सो जाता, पिता जागते बैठे रहते। यह जागरण सुबह के दो बजे तक चलता था। इस समय भीम को पढ़ने के लिए उठाकर रामजी सकपाल सोते थे। बिना काँच के गोले की केरोसीन चिमनी की चंचल लौ की दिशा के साथ पुस्तक का समंजन करते हुए भीम प्रातः काल देर तक पढ़ता रहता था।

संकीर्ण बुद्धि मतांधों द्वारा प्रताड़ना और असहनीय अपमान के होते हुए भी, जीवन में ऊँचाईयों को छूने के लिए उदारमना लोगों के प्रोत्साहन तथा अपने पिता के सम्बलन से भीम ने अंततः 1907 में मेट्रीकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की। रामजी सकपाल अपनी सीमित आय व मुम्बई के खर्चों में तालमेल नहीं बैठा पा रहे थे अतः आनंद राव को विद्यालय छोड़कर रोजगार में लगना पड़ा। दोनों ने मिलकर भीम के अध्ययन हेतु अपने प्रयत्नों को केन्द्रित करने का निर्णय लिया। महार समाज के लिए भीम की यह उपलब्धि असामान्य थी। इस प्रसंग पर महार समाज द्वारा उत्सव मनाया गया, भीम का सम्मान करने के लिए एक सभा आहूत की गई। इस सभा में प्रसिद्ध मराठी लेखक तथा समाज सुधारक कृष्ण जी अर्जुन केलुस्कर भी उपस्थित थे। ये विल्सन हाई स्कूल में सहायक अध्यापक थे। युवा भीमराव की अध्ययन–शीलता से प्रभावित होकर उन्हें अपनी लिखी ''गौतम बुद्ध का जीवन' नामक पुस्तक भेंट की जिसने भीमराव के जीवन की दिशा बदलने में आधार–प्रेरणा का कार्य किया। केलुस्कर जी ने रामजी सकपाल से पुत्र को उच्च शिक्षा दिलाने का आग्रह किया। इनके ही प्रयत्नों से बड़ौदा महाराज सयाजीराव ने भीमराव को प्रतिमाह पच्चीस रूपये की छात्रवृत्ति देना स्वीकार किया। 3 जनवरी 1908 को उच्च अध्ययन हेतु भीमराव ने एलफिंस्टन कॉलेज में प्रवेश लिया। समाज का वातावरण एवं परिवार की परिस्थितियाँ जैसी थी वह निर्विघ्न अध्ययन के अनुकूल नही थी, अतः इस समय तक राम जी अपने परिवार के साथ परेल में 'इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट चाल क्रमांक एक' में आ गये। इसके द्वितीय तल पर कक्ष क्रमांक 50 एवं 51 इनके पास थे। कक्ष क्रमांक 50 भीमराव का अध्ययन कक्ष बना। जैसे ही अंतिम परीक्षा निकट आयी, उन्होंने अपना मन अध्ययन पर केन्द्रित किया और 1912 में अपनी बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। अब तक का अध्ययन परीक्षा उत्तीर्ण करने के उद्देश्य से ही था। बाबा साहब ने बाद में कभी कहा था–''यद्यपि मैं विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में प्रतिवर्ष उत्तीर्ण होता रहा, फिर भी कभी द्वितीय श्रेणी नहीं मिली।

बी.ए. की परीक्षा में तो मेरी द्वितीय श्रेणी कुछ ही अंकों की कमी के कारण रह गई।"

पिता जिन्होंने भीमराव को इस मुकाम तक पहुँचाया, सफलता के अगले सौपान देखने के लिए जीवित नहीं रहे। 2 फरवरी 1913 को उनका देहान्त हो गया।

जून 1913 मे भीमराव के जीवन में एक अपूर्व अवसर आया। सयाजी राव गायकवाड़ ने अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति देने का निश्चय किया। भीमराव ने इस सम्बन्ध में महाराजा से उनके मुम्बई स्थित प्रासाद में मिलकर निवेदन किया। महाराजा ने तीन अन्य विद्यार्थियों के साथ भीमराव को भी उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति देने का निश्चय किया।

21 जुलाई 1913 को अम्बेडकर जी ने न्ययार्क पहुँचकर कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। न्यूयार्क में भीमराव ने जिस समाज–जीवन का दर्शन किया वह तत्कालीन भारत की तुलना में अकल्पनीय था। वहाँ मित्रों के साथ वे स्वतंत्र घूम सकते थे, समानता के स्तर पर बात कर सकते थे, सबके साथ बैठकर अध्ययन व भोजन कर सकते थे। उनके लिए यहाँ का परिवेश नवीन जीवन के रहस्योद्‌घाटन जैसा था। यहाँ भी आर्थिक संकट ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। अपने खर्च न्यूनतम रखते हुए भी उन्हें छात्रवृत्ति के अतिरिक्त ऋण भी लेना पड़ता था। यहाँ उनके अध्ययन के विषय राजनीति विज्ञान, नैतिक दर्शन, नृवंशशास्त्र, समाज शास्त्र तथा अर्थशास्त्र थे। अंततः दो वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् असीम आनंद देने वाली सफलता ने उनके चरण चूमे। अम्बेड़कर जी को अपने शोध प्रबंध 'प्राचीन भारत में वाणिज्य' (Ancient Indian Commerce) के लिए 1915 में एम.ए. की उपाधि प्राप्त हुई। अम्बेडकर जी साथ–साथ एक दूसरे शोध पर भी कार्य कर रहे थे, उसका विषय था–'भारत का राष्ट्रीय लाभांशः एक ऐतिहासिक व विश्लेषणात्मक अध्ययन' (National Dividend of India a Historic and Analytical Study) कोलाम्बिया विश्व विद्यालय ने जून 1916 में इसे पी.एच.डी. के लिए स्वीकार किया। आठ वर्ष बाद इस प्रबंध को परिवर्धित रूप में 'ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास' (The Evolution of Provincial Finance in British India) नाम से छपवाया गया।

अमेरिका में रहते समय अम्बेडकर जी के मन को दो बातों ने अत्यधिक प्रभावित किया–एक, अमेरिका का संविधान–विशेषकर इसका चौदहवाँ संशोधन जिसने निग्रो लोगों की स्वाधीनता की घोषणा की। द्वितीय बुकर टी. वाशिंगटन का प्रेरक जीवन, वे निग्रो नस्ल के महान सुधारक थे, जिन्होंने वर्षों से शारीरिक,

मानसिक व आध्यात्मिक दृष्टि से दबे–कुचले निग्रो समुदाय को मन–बुद्धि व कर्म की शिक्षा देकर उनकी गुलामी की जंजीरों को तोड़ा।

जून 1916 में अम्बेड़कर जी ने अमेरिका से विदा ली तथा लंदन पहुँचे। अक्टूबर मास में 'ग्रेस–इन' में कानून तथा 'लंदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स एवं पोलिटिकल साइंस' में अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए प्रवेश लिया। अर्थशास्त्र में उच्चतर अध्ययन कर डी.एस.सी. की उपाधि प्राप्त करने की उन्हें अनुमति मिल गयी, किन्तु दुर्भाग्य से इसी समय उनकी छात्रवृत्ति की अवधि पूरी हो गई और अर्थाभाव में उन्हें लौटना पड़ा। इन परिस्थितियों में अपने शुभचिंतक प्रोफेसर एडविन कन्नान की अनुशंषा पर लंदन विश्वविद्यालय से अक्टूबर 1917 से अधिकतम चार वर्ष की अवधि में पुनः अध्ययन प्रारम्भ करने की अनुमति प्राप्त कर ली। अम्बेड़कर जी ने अपनी असहाय अवस्था में भारत लौटने का विचार अवश्य किया किन्तु अपने ध्येय की प्राप्ति का मार्ग भविष्य में खुला रखने की व्यवस्था करके, अध्ययन के लिए आवश्यक धन का कुछ प्रबंध करके फिर आऊँगा इस अदम्य इच्छा के साथ!!

बाद में सिडेनहॅम कॉलेज में अर्थशास्त्र के अस्थाई प्राध्यापक रहते हुए प्राप्त वेतन से कुछ धन बचाया, कुछ सहायता कोल्हापुर महाराजा साहू जी से प्राप्त की, अपने मित्र श्री नवल भथेना से रूपये उधार लिए और जुलाई 1920 में कानून और अर्थशास्त्र का अध्ययन पूर्ण करने के लिए पुनः लंदन के लिए प्रस्थान किया।

समय और धन बचाना उनके लिए महत्वपूर्ण था। प्रातः 8.00 बजे सर्वप्रथम लंदन म्यूजियम में पहुँचने वाले और सांय 5.00 बजे समय पूरा होने के बाद बाहर निकलने वाले अंन्तिम अध्येता अम्बेडकर जी होते थे। बिना मध्यान्ह भोजन के रहते थे। जहाँ वे पेइंग गेस्ट के रूप में रहते थे, वह महिला भी सहृदय नहीं थी–नाश्ते में मिलता था एक ब्रेड, एक मछली का टुकड़ा और एक कप चाय। मितव्ययिता का अनुमान इससे लगा सकते है कि वे प्रतिमाह आठ पौण्ड की राशि से लंदन जैसे शहर में निर्वाह कर रहे थे। उनका पेट हमेशा खाली रहता था किन्तु पुस्तकालय से बाहर आते समय दिन भर संदर्भ ग्रंथों से उतारी टिप्पणियों युक्त कागजों से जेबें भरी रहती थी।

यह सब वर्णन करने का उद्देश्य है उन परिस्थितियों का दिग्दर्शन करवाना जिसमें एक दलित युवक ने विद्या के उच्चतम विभूषण प्राप्त किये। कोलम्बिया विश्वविद्यालय अमेरिका से एम.ए.,पी.एच.डी., लंदन विश्वविद्यालय से एम.एस.सी. , डी.एस.सी. तथा ग्रेज–इन से बार–एट–लॉ की उपाधियाँ उनके पास थी।

तत्कालीन तथाकथित दलित समाज के व्यक्ति की यह उपलब्धि उल्लेखनीय, तथाकथित उच्च वर्ग के लिए स्पृहणीय थी।

किन्तु बाबा साहब ने यह अध्ययन, यह योग्यता वृद्धि व्यक्तिगत लाभ के लिए की थी क्या? उत्तर नहीं में मिलता है। दलित समाज की समस्याओं को समझने, तार्किक दृष्टि से विश्लेषण करने तथा समाधान के मार्ग की ओर अग्रसर होने की तैयारी के रूप में यह सब उपक्रम था। उनके पास जितनी उपाधियाँ थी, उनके आधार पर वे आसानी से सरकारी नौकरी प्राप्त कर सुखमय जीवन बिता सकते थे, किन्तु उन्होंने समाज सेवा का मार्ग चुना। बौद्ध दीक्षा के समय नागपुर में 15 अक्टूबर 1956 को आपने इसे स्पष्ट किया था–''जब मैं लंदन से पढ़कर वापस आया तब मुझे सरकार ने जिला न्यायाधीश बनने के लिए आमंत्रित किया। लेकिन इस रस्सी को मैंने अपने गले में इसलिए नहीं बंधवाया कि मेरे सरकारी नौकर हो जाने पर मेरे लोगों की सेवा कौन करेगा? इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मैं नौकरी के चक्कर में नहीं पड़ा।''

बाबा साहब ने अपना जीवनोद्देश्य प्रकट करते हुए मार्च 1924 की बहिष्कृत हितकारिणी सभा के कार्यकर्त्ताओं की बैठक में भीम प्रतिज्ञा की ''दलित वर्ग के चहुमुखी विकास को सुनिश्चित करने के लिए मैं पूर्ण निष्ठा के साथ अत्यंत कठोर परिश्रम करूँगा। इसी कार्य के लिए मैंने इतना ज्ञान अर्जित किया है। मैं निश्चित रूप से अपनी प्रज्ञा–शक्ति का उपयोग अपने परिवार या अपनी जाति तक सीमित करने वाला नहीं हूँ। मैं इसे सम्पूर्ण दलित वर्ग के लाभ के लिए, उनके सामाजिक आंदोलन की स्थापना एवं संघर्ष के लिए अर्पित कर दूंगा।

अस्पृश्यों के समक्ष विकट चुनौतियाँ हैं। मैं जागरूक हूँ कि मैं सम्भवतया उनकी सभी समस्याओं का हल नहीं कर सकूँ। किन्तु मुझे विश्वास है कि मैं इन चुनौतियों को संसार के समक्ष प्रस्तुत कर सकता हूँ तथा हमारे कष्टों को उनके ध्यान में ला सकता हूँ। अस्पृश्यों के समक्ष चुनौतियाँ विशाल हिमालय के समान हैं। इन हिमालयों से मैं सिर टकराने वाला हूँ। इसलिए कृपया स्मरण रखिये कि यदि मैं हिमालयों को भू–शायी न कर सका, सात करोड़ अस्पृश्य मेरे रक्तरंजित सिर को देखकर हिमालय को नत करने के लिए अपने जीवन का बलिदान करने के लिए प्रवृत्त होंगे।''

अस्पृश्यताः तत्व-विचार

अस्पृश्यता के विरुद्ध बाबा साहब के संघर्ष को समझने से पूर्व उसकी तात्विक भूमिका को ध्यान में लेना आवश्यक है। सैद्धान्तिक दृष्टि से विचार करें तो प्रत्येक पक्ष से अस्पृश्यता पाप है।

1. **मानवीयता**-मानव एक जाति है जो उसे पशु, पक्षी, पादप आदि अन्य जातियों से पृथक् करती है। अतः प्रत्येक मानव को मनुष्य के नाते समान अधिकार प्राप्त हैं।

2. **सांस्कृतिक दृष्टि**-हिन्दुत्व के विकास में सबका योगदान है। राम, कृष्ण, विश्वामित्र, बुद्ध, महावीर, जैसे क्षत्रिय, ब्राह्मण वशिष्ठादि सप्तऋषियों की संतानें, हर्ष, अग्रसेन जैसे वैश्य, ऐतरेय, सत्यकाम जाबालि, वाल्मिकी, वेदव्यास, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, रविदास, चोखा मेला जैसे तथाकथित शूद्र, सभी इस बात को सिद्ध करने वाले ऐतिहासिक उदाहरण हैं।

3. **न्याय दृष्टि**-बिना तर्क या तथ्य के केवल रूढिगत व्यवहार को परम्परा कहकर नहीं चलाया जा सकता। व्यक्ति के मानवीय अधिकार का निर्माण सनद से नहीं होता, यह जन्म से प्राप्त होता है। यह नैसर्गिक न्याय है कि जन्म या जाति के आधार पर समान नागरिक अधिकारों से किसी भी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता।

4. **समाजिक दृष्टि**-समाज जोड़ने से बना है। समाज स्नेह से बनता है, घृणा से तो कबीले बनते हैं जो झूठे अहंकार में सतत् संघर्ष की भूमिका बनाते हैं। समाज के लिए बंधुता, समता व समरसता प्राथमिक आवश्यकता है।

5. **आध्यात्मिक दृष्टि**-"आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति सः पण्डितः" कहते हैं। विद्वान उसी को कहा है जो सबमें एक ही आत्मा की अनुभूति करता है। सबमें एक ही आत्मा का विस्तार है तो उन परमात्मा के अंशों से घृणा कैसे?

6. **धार्मिक दृष्टि**-'धर्मो धारयते प्रजाः' प्रजा का धारण करने वाले नीति–नियमों

का समुच्चय धर्म कहलाता है। एक ही धर्म को मानने वाले लोगों में वैमनस्य, भेद बुद्धि उत्पन्न करने वाली बातें धर्म सम्मत कैसे हो सकती हैं?

7. **स्वातंत्र्य दृष्टि:**–बिना समता व समरसता के स्वतंत्रता निरर्थक है। सब लोग परस्पर व्यवहार में स्वतंत्र नहीं तो स्वतंत्र कैसे कहला सकते हैं?

8. **राजनीतिक दृष्टि:**–प्रजातंत्र में सभी नागरिक समान मान को प्राप्त होने के उपरांत भी अनुसूचित जाति, जनजाति को न्याय व संरक्षण के लिए कानूनी प्रावधान आज भी रखना पड़े, इसका अर्थ है समाज में सबको समानता प्राप्त होने का स्वप्न अभी अधूरा है।

9. **आर्थिक दृष्टि:**–'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा सभी का अभ्युदय धर्म है–यह आर्थिक विकास का आधार है। बिना बंधुता, समता व समरसता के अंत्योदय का विचार उत्पन्न नहीं हो सकता। दूसरा, समाज की उन्नति के लिए अर्थोपार्जन के विभिन्न कार्य करने पड़ते हैं। कार्य छोटा बड़ा हो सकता है पर उसके कारण अस्पृश्यता कैसे हो सकती है? कोई जूते की दुकान चलाकर भी स्पृश्य और एक अध्यापन करके भी अस्पृश्य कैसे हो सकता है?

10. **कर्त्तव्य दृष्टि:**–उपकार या दया नहीं, सबके साथ समान व्यवहार मानव मात्र का कर्त्तव्य है।

इस प्रकार अस्पृश्यता को किसी की भी सैद्धान्तिक स्वीकृति नही हैं–धर्म शास्त्र समता, अद्वैत की बात कहते हैं, रामानंद, कबीर, गुरू नानक, नारायण गुरू, बाबा रामदेव, पीपाजी, गोगाजी, पाबूजी, हरबू जी ने अस्पृश्यता को स्वीकृति प्रदान नहीं की, इसे समाप्त करने का प्रयास किया। उडूपी में सभी धर्माचार्यों ने प्रस्ताव किया–"हिन्दवः सौदरा सर्वे, न हिन्दू पतितो भवेत्।" अवतार, लोक–देवता, संत, समाज सुधारक सभी इस अमानवीय कुरीति को समाप्त करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहे हैं, किन्तु अब तक भी हम इसे पूर्णतया समाप्त करने में सफल क्यों नहीं हुए हैं? बाबा साहब कहते हैं कि इसका कारण "स्पृश्य लोगों के मन की सनक है।" संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरूजी भी इसका कारण "सवर्णों के मन का भाव" बताते हैं। केवल सैद्धान्तिक पक्ष में व्याख्यान या अस्पृश्यता निवारण के पक्ष में प्रस्तावों से हिन्दू समाज में दृढ़ मूल इस अमानवीय रूढ़ि को समाप्त करना सुगम नहीं है। मतांतरण के लिए तथाकथित अछूतों के सहयोग का आकलन करने के लिए बुलाई आम सभा (31 मई 1936) में बाबा साहब

इसी दोहरी वृत्ति पर आक्रोश प्रकट करते हुए कहते हैं–

''ईश्वर सर्वव्यापी है, यह विज्ञान का सिद्धान्त है धर्म का नहीं, क्योंकि धर्म का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के व्यवहार से है। इसके विपरीत यदि हिन्दू इस बात पर जोर देते हैं कि परमेश्वर की सर्वव्यापकता दर्शन का सिद्धान्त नहीं, बल्कि उनके धर्म का मूल सिद्धान्त है, मैं कहूँगा कि दुनिया में कहीं भी ऐसी स्वार्थपरता नहीं मिलेगी जैसी हिन्दुओं में है।

हिन्दुओं को उन क्रूर लोगों में रखा जा सकता है जिनकी कथनी और करनी में जमीन आसमान का अंतर है। उसके मुँह में राम और बगल में छुरी है। वे संतों की तरह बात करते हैं और कसाइयों की तरह बरताव। वे उन लोगों की संगत में रहते हैं जिनका मानना है कि ईश्वर सर्वव्यापी है, लेकिन मनुष्य के साथ जानवरों से भी बुरा व्यवहार करते हैं, वे ढोंगी हैं। जो चींटियों को तो शक्कर खिलाते हैं, लेकिन इंसान को पीने के पानी से वंचित रखकर उसकी जान ले लेते हैं, वे ढोंगी हैं'' तत्कालीन परिस्थितियों में समाज के व्यवहार से बाबा साहब का व्यथित होना स्वाभाविक था। श्री गुरूजी भी सिद्धान्त और व्यवहार में इस अंतर को जानते थे अतः उडूपी विश्व हिन्दू परिषद सम्मेलन में सभी धर्माचार्यों की इस घोषणा के उपरान्त भी कि ''सभी हिन्दू सहोदर भाई हैं, कोई हिन्दू पतित नहीं होता'' श्री गुरूजी ने इस सम्मेलन के पश्चात् मकर संक्रान्ति (14 जनवरी 1970) के दिन संघ के कार्यकर्त्ताओं को एक पत्र लिखा, जिसमें अस्पृश्यता की समस्या का समाधान ढूंढने के लिए व्यावहारिक सुझाव दिये थे। इस पत्र के कुछ अंश यहाँ उदधृत करना समीचीन होगा, जिनकी आज भी प्रासंगिकता है–

''अस्पृश्यता का निवारण करने के लिए जो प्रस्ताव पारित किया गया है और जिसे सभी आचार्यों, धर्म गुरूओं मठाधिपतियों और अन्य दिव्य महापुरूषों ने अपना आशीर्वाद प्रदान किया है, उस प्रस्ताव को केवल मौखिक शब्दावली से जीवन में नहीं उतारा जा सकता। सैंकड़ों वर्ष पुराने दुराग्रह केवल शब्दों और चिंतन करने मात्र से नष्ट नहीं हो सकते। इस सम्बन्ध में हमें कठोर परिश्रम करना होगा तथा नगर–नगर, ग्राम–ग्राम, घर–घर में तथा जन–जन में सही परिप्रेक्ष्य में इस प्रस्ताव का प्रचार करना होगा। लोगों को यह समझाना होगा कि यह प्रस्ताव उन लोगों को युगानुरूप सुविधाएँ प्रदान करने के लिए नहीं है, अपितु एक ग्रहणीय सिद्धान्त तथा जीवन–पद्धति में सुधार के लिए एक विनम्र प्रयास है। यह प्रस्ताव उन पापों का प्रायश्चित मात्र है जो हिन्दू समाज ने विगत काल में किए हैं। लोगों का ह्रदय परिवर्तन करना है तथा उनके दृष्टिकोण एवं व्यवहार में भावात्मक नैतिक परिवर्तन लाना है। जो लोग सबसे निचले धरातल पर खड़े हैं, उनके आर्थिक और

राजनीतिक उत्थान के लिए काम करना और शेष समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ा होने का उन्हें सामर्थ्य देना यह अत्यन्त कठिन काम है। किन्तु यह कार्य अपने आप में पर्याप्त नहीं है, क्योंकि ऐसी समानता अलगाववाद की भावना को नष्ट करके ही लाई जा सकती है। हम जो कार्य पूरे जोश से करना चाहते हैं, वह केवल आर्थिक और राजनीतिक समानता का नहीं है। हम वास्तविक, पूर्ण समरसता चाहते हैं। यह परिवर्तन शासकीय योजनाओं की बलपूर्वक थोपी गई राजनीति से दूर है। राजनीतिक दलों के चतुराई पूर्ण आधे–अधूरे प्रयासों से इस कार्य में सफलता प्राप्त करना असंभव है। सभी लोगों के दैनंदिन व्यवहार में उनके हृदय से इस भावना का उद्वेग उत्साह के साथ फूटना चाहिए। वे सब मिलकर एक आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक धरातल पर यह कार्य करें। सम्मेलन में विद्यमान सभी सहभागियों के साथ वे लोग भी जो इस कार्य के प्रति सहानुभूति रखते हैं और इस विचार का समर्थन करते हैं, उन सभी को अनिवार्यतः सामने आना चाहिए और सामाजिक समरसता के रथ को कंधा देकर आगे बढ़ाना चाहिए। इसके साथ ही रूढ़ियों में जकड़े दूषित दुराग्रहों को शक्तिशाली धक्का देकर चूर–चूर कर देना चाहिए। हमें इस कार्य में अनेक बाधाओं, घोर कष्टों और कठिनाइयों से आमना–सामना होने का पूर्वानुमान कर लेना चाहिए। कार्य करते हुए प्रायः हमें ऐसा भी अनुभव हो सकता है कि हम एक निरर्थक कार्य कर रहे हैं, जिसका हमें श्रेय नहीं मिल सकता। किन्तु तत्काल परिणाम प्राप्त करने या किसी चमत्कार से प्राप्त सफलता की हमें आशा न करके वास्तविकताओं का सामना करना चाहिए और इस प्रकार हम सनातन या शाश्वत धर्म के गौरव तथा प्रकाशमान कीर्ति को स्थापित करने में समर्थ हो सकें।''

अस्पृश्यता निवारण हेतु प्रयत्न की धाराएँ

वर्णव्यवस्था के विकृत रूप जाति तथा कालांतर में ऊँच–नीच तथा छुआछूत के आधार पर जातियों का अमानवीय श्रेणीकरण अपने समाज में हो गया यह सत्य है, किन्तु सम्पूर्ण समाज ने इसे एकमत व एक मन से स्वीकार कर लिया, ऐसा नहीं है। संत बनने, मंदिर बनवाने, अपना कुँआ खुदवाने पर रोक नहीं थी किन्तु सर्वसमाज की सामूहिक स्वीकृति के मंदिर, जल स्रोत, श्मशान नहीं रह पाये यह भी सत्य है। समाज में इस कुरीति को समाप्त करने के सतत् प्रयत्न करने वाले लोगों की भी श्रृंखला है, भले ही उनके प्रयास फलवती न हुए हों, या उनकी प्रयत्न परम्परा उनकी मृत्यु के साथ ही रूक गई हो। इस प्रकार के प्रयत्नों की दो धाराएँ दिखायी देती हैं–

(क) दृश्यानुभूति से उत्पन्न संवेदना-संवेदनशील ह्रदय वाले लोगों की कर्म प्रेरणा का आधार–अमानवीय व्यवहार से द्रवित मन की पीड़ा होती है। इससे दयाभाव उत्पन्न होता है या पुण्य प्राप्ति की इच्छा से 'परोपकाराय पुण्याय', 'दयाधर्म का मूल' के भाव से अस्पृश्यता निवारण के कार्य में लगे लोक–देवताओं, संतों, भक्तों, समाज सुधारकों की अपने देश में पर्याप्त संख्या है। रामानंद, कबीर, तुकाराम, बाबा रामदेव, नारायण गुरू, ज्योतिबा फुले जैसे कई नाम गिनाये जा सकते हैं।

महात्मा गांधी की अस्पृश्यता निवारण के सम्बन्ध में दृष्टि का प्रकार यही है। उनका विचार था कि परम्पराओं से निर्मित होने वाली समाज व्यवस्था के ताने–बाने को बिना बिगाड़े समाज में परिवर्तन लाया जाना चाहिए। उनकी भूमिका थी कि जो सबल हैं, उन्हें जीव दया और मानवता के आधार पर–दुर्बलों की सहायता करनी चाहिए।

इसका कारण है– कर्म आधारित जाति या वर्णव्यवस्था कैसे भी बनी हो, उनसे प्राप्त सुविधाएँ कालांतर में निहित स्वार्थ उत्पन्न करती हैं और उन्हें बनाये रखने का प्रयत्न होता है। हरिजन, मेहत्तर, राजा–ये दृश्यानुभूति से

उत्पन्न संवेदना तथा आत्म–ग्लानि, किन्तु समादर या सम्मान देने का दिखावा करते हुए 'सफाई कर्मचारी या 'मैला ढोने' की व्यवस्था को बनाये रखने की स्वार्थ दृष्टि में से गढ़े गये शब्द हैं। उनसे तथाकथित सेवा लेना बंद नहीं किया और अस्पृश्यता निवारण के नारे–प्रवचन चलते रहे। वैकल्पिक पद्धति के शौचालय निर्मित होने पर ही उन्हें सिर पर मैला ढोने की अमानवयी कृति से मुक्ति मिली, सम्मान तो अभी भी पूरा मिलना शेष है। तथाकथित सम्मान भी कानूनों की बाध्यता के कारण या दण्ड के भय से है। स्वाभाविक समरसता मन का विषय है, कानून का नहीं। यही कारण है कि जिस व्यक्ति ने छुआछूत की राक्षसी प्रथा से पीड़ा अनुभव कर परिवर्तन का प्रयत्न किया वह वहीं तक चला जहाँ तक समान संवेदना वाले व्यक्तियों का समूह कार्य प्रवण रहा, यह दृश्यानुभूति जब संवेदना जाग्रत न कर सकी तो उसके बाद उनका काम भी ठप्प हो गया।

(ख) **आत्मानुभूति से उत्पन्न आक्रोश**–जिसने अस्पृश्यता के दंश की पीड़ा को स्वयं झेला है, अधिकारों का हनन और दलन जिसने भोगा है, इस भोगे हुए यथार्थ की आत्मानुभूति आक्रोश तो उत्पन्न करती ही है, परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा का आधार भी बनती है। इसलिए दलितोद्धार के कार्य में लगने वाले कार्यकर्त्ता आत्मानुभूति प्राप्त होने चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने अस्पृश्यता की कुरीति पर सम्भवतया सबसे तीखे प्रहार किये किन्तु इस कार्य के सम्बन्ध में उनकी दृष्टि विचारणीय है। केरल की दशा देखकर स्वामी विवेकानंद ने डॉ. पालपू को सलाह दी कि तथाकथित अस्पृश्य वर्ग में जन्म लिये किसी धार्मिक व्यक्ति द्वारा अस्पृश्यता निवारण का कार्य शुरू कराना चाहिए। स्वाभाविक ही डॉ. पालपू की दृष्टि नारायण गुरू की ओर गई। उरू जाति, उरू मत, उरू देव' (एक जाति, एक मत, एक देव) की घोषणा के साथ ही केरल में सामाजिक क्रांति का बीजारोपण हुआ और बिना हल्ला–गुल्ला अस्पृश्यता निवारण हो गया।

'अस्पृश्यता निवारण संघ' के ठक्कर बापा को पत्र में बाबा साहब ने भी इसी भूमिका की ओर संकेत किया है:–

''यदि अस्पृश्योन्नति के कार्य के प्रति मन में पीड़ा व आस्था वाले व्यक्तियों की आवश्यकता है, तो क्यो न उनका चुनाव अस्पृश्यों में से ही किया जाए? ...... इस कार्य के लिए प्रेम एवं आत्मीयता की भावना का होना अनिवार्य है।''

श्रीपाल सबनीस ने इन दोनों दृष्टियों की तुलना करते हुए लिखा है–

"एक प्राणीमात्र के प्रति दया का उत्तराधिकार ले करुणा की वर्षा करता है, तो दूसरा दया की भीख अस्वीकार कर समता के मंत्र के आधार पर मानवीय मूल्यों के प्रकाश–कण प्रदान करता है।"

उपरोक्त दो धाराओं के अनुसार स्वाधीनता संग्राम के काल से अब तक चार दृष्टियाँ दिखायी देती हैं– कांग्रेस दृष्टि, हिन्दू महासभा की दृष्टि, संघ दृष्टि तथा बाबा साहब की दृष्टि। प्रथम तीन का संक्षेप में यहाँ विचार करना उचित रहेगा।

1. **कांग्रेस की दृष्टि:**–मार्च 1936 में प्रकाशित 'जाति का विनाश नामक पुस्तक में बाबा साहब कहते हैं– "एक समय यह महसूस किया गया कि सामाजिक दक्षता के बिना किसी भी गतिविधि में स्थायी प्रगति नहीं हो सकती। बुरी सामाजिक परम्पराओं के कारण हिन्दू समाज निपुणता की स्थिति में नहीं है और इन बुराईयों को दूर करने के लिए निरंतर प्रयास किए जाने की जरूरत है। इसी तथ्य को समझते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ सोशल–कान्फ्रेंस भी बनाई गई। कांग्रेस जहाँ देश के राजनीतिक संगठन की कमजोरियों को परिभाषित करने को लेकर चिंतित थी, वहीं सोशल कान्फ्रेंस हिन्दू समाज के सामाजिक संगठन की कमजोरियों को दूर करने में जुटी थी। कुछ समय के लिए कांग्रेस और कान्फ्रेंस ने एक ही गतिविधि की दो शाखाओं के रूप में साथ काम किया और उनके सालाना सत्र एक ही पाण्डाल में होते थे। लेकिन बाद में ये दोनों दो दलों में बदल गए .... जिनके बीच उग्र विवाद पैदा हो गया....... दोनों दल एक दूसरे के दुश्मन सिद्ध हो गए।...... दिवंगत श्री तिलक के नेतृत्व में कांग्रेस ने सोशल कान्फ्रेंस को अपने जिस पाण्डाल के प्रयोग की अनुमति दी थी, वह वापस ले ली गई और दुश्मनी इस हद तक बढ़ गई कि जब सोशल कान्फ्रेंस ने अपना खुद का पाण्डाल बनाने की इच्छा व्यक्त की तो विरोधियों ने उसे जलाने की धमकी दे दी।..... श्री डब्ल्यू. सी. बनर्जी ने 1892 में इलाहाबाद में कांग्रेस के आठवें सत्र के अध्यक्ष के रूप में जो भाषण दिया, वह सोशल कान्फ्रेंस की मौत पर अन्त्येष्टी के भाषण जैसा था....... "मैं उन लोगों को कतई नहीं मानता जो कहते थे कि सामाजिक व्यवस्था को सुधारे बिना हम राजनीतिक व्यवस्था नहीं सुधार सकते।"

इस प्रकार कांग्रेस की प्राथमिकता राजनीतिक आंदोलन के माध्यम से स्वाधीनता का प्रयत्न था। स्वतंत्रता के बाद सामाजिक प्रश्नों पर विचार कर

लेंगे ऐसी उनकी मान्यता थी। कांग्रेस में कुछ प्रगतिशील व उदारवादी लोगों जैसे रानाडे आदि ने प्रारम्भ में अछूतों की मदद की थी किन्तु बाबा साहब इन्हें सफेद पोश सुधारवादी कहते थे, क्योंकि ''वे सफेद पोश मसलों से ही निपटना चाहते थे, मसलन विधवाओं के मुण्डन की धर्म में अनुमति है या नहीं, ब्राह्मण महिलाओं का पुनर्विवाह, पुरूष लम्बे बाल रखें या नहीं, महिलाओं को शिक्षा दी जाय या नहीं वगैरह। इन चर्चाओं का अछूतों की स्थिति से कोई सरोकार नहीं है।''

कांग्रेस का 1918 का कोलकात्ता अधिवेशन एकमात्र ऐसा अधिवेशन है जिसमें बाबा साहब भी गये थे। इसी अधिवेशन में प्रथम बार अस्पृश्यता निवारण का प्रस्ताव लाया गया। यह प्रस्ताव पढ़ने से स्पष्ट होता है कि यह अथवा इसके जैसे प्रस्ताव इसलिए लाये गये थे कि तथाकथित अस्पृश्यों का समर्थन कांग्रेस–मुस्लिम लीग समझौते को मिल सके तथा स्वाधीनता संग्राम में दलित अलग खेमा न बने। प्रस्ताव इस प्रकार था–

''हम लोग लोकतंत्र के समर्थक हैं, इसलिए इस बात के लिए स्वतंत्र हैं कि अपने घर की चारदीवारी के भीतर कैसा भी व्यवहार करें। हम यह नहीं कहेंगे कि अस्पृश्यों को आप अपने घर में लें अथवा उनके घर जाएँ। व्यक्ति किसके साथ बैठकर भोजन करें, यह भी उसका व्यक्तिगत प्रश्न है। इसलिए आप उसके साथ भोजन करें अथवा उसे अपने साथ भोजन करायें, इसका भी आग्रह नहीं करेंगे। प्रत्येक को अपनी जाति व धर्म प्रिय होता है। अपनी जाति के बाहर विवाह करें, यह भी नहीं कहेंगे। आपके धर्म में, रीति–रिवाज में, घर में, काम–काज में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की हमारी इच्छा नहीं है। हम इतना ही चाहते है कि अस्पृश्यता दूर हो।''

इसका लब्बोलुआब इतना ही है कि अस्पृश्यता के सभी उपकरणों को यथावत रखते हुए छुआछूत दूर करेंगे। उपरोक्त सब करने की छूट है तो फिर अस्पृश्यता क्या है? और किसका क्या निवारण करेंगे?

2. **हिन्दु महासभा की दृष्टि**–शेष राव मोरे लिखते हैं–''हिन्दु संगठनों की ओर दो भूमिकाओं से देखा जा सकता है। एक दृष्टि से हिन्दू संगठन साध्य होता है, जब ऐसा कहा जाता है कि एक वर्णी व समताधिष्ठित–समाज अर्थात् हिन्दू संगठन, तब तक ध्येय की दृष्टि से होता है। इस दृष्टिकोण से हिन्दू संगठन, बाबा साहब की ध्येय सृष्टि के आदर्श समाज का भाग बनता है। दूसरी दृष्टि से देखने पर हिन्दू संगठन सामाजिक विचार–शैली

का भाग है। 'कम से कम हिन्दू संगठन के लिए ही सुधार करो' का आह्वान अथवा युक्तिवाद किया जाता है, तब हिन्दू संगठन सामाजिक विचार–शैली का भाग बनता है। एक वर्णी समाज निर्माण करने के लिए उपयोग में आने वाला एक साधन बनता है। तब समाज सुधार के उद्देश्य के निमित्त हिन्दू संगठन के आह्वान का नीति के रूप में उपयोग किया जाता है। आपने सुधार नहीं किया तो आपका समाज जीवन संग्राम में टिक नहीं सकेगा, आप नष्ट हो जाओगे। समाज के अभावग्रस्त लोग आप को छोड़ जाएँगे, मतान्तरण कर आपके शत्रु के साथ मिल जाएंगे इसलिए आप सुधार करो व संगठित होओ, इस प्रकार का युक्तिवाद नीति का ही भाग होता है। बाबा साहब के विचार से स्पष्ट होता है कि उन्हें उपर्युक्त दोनों दृष्टियों से युक्त हिन्दू संगठन की अभिलाषा थी।''

बाबा साहब और हिन्दू महासभा में बहुत से विषयों पर मतैक्य था किन्तु अस्पृश्यता निवारण के संदर्भ में हिन्दू महासभा के प्रयत्नों की गति से संतुष्ट नहीं थे। बाबा साहब कहते हैं–

''आजकल महाराष्ट्र में हिन्दू महासभा सक्रिय है। लेकिन जो जोश रानडे और आगरकर के समय में देखने को मिला था, वह महाराष्ट्र के इन हिन्दू संगठनों के लोगों में नहीं दिखता। वे आत्मशुद्धि से ज्यादा दूसरे धर्म के लोगों के शुद्धिकरण (घर वापसी) में दिलचस्पी ले रहे हैं और एक संगठन की बजाय मुठ्ठी भर लोग हैं। हिन्दुओं की संख्या बड़ी है, लेकिन उनमें एकता नहीं है। उन्हें इसका पूरा अंदाजा है, लेकिन इनमें से अधिकांश नेता अच्छे समय के ही साथी हैं। यदि अछूतों को लगता है कि छुआछूत से मुक्ति के लिए उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता तो अछूतों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।''

3. **संघ–दृष्टि**– सामाजिक सुरक्षा, मतांतरण रोकना, हिन्दू संगठन, दलित खेमे के रूप में समाज का विभेदीकरण रोकना आदि किसी भी उद्देश्य की पूर्ति या हिन्दू विखण्डन के भय के कारण अस्पृश्यता निवारण नहीं, अपितु यह अमानवीय, असांस्कृतिक और हिन्दू समाज पर कलंक है अतः इसे समाप्त होना चाहिए, यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की दृष्टि है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है–''चिंताशील लोग कुछ समय से...... सोचते हैं कि जगत के इस सर्वश्रेष्ठ धर्म का नाश ही समाज की उन्नति का एक मात्र उपाय है। सुनो मित्र, प्रभु की कृपा से मुझे इसका रहस्य मालूम हो गया है। दोष धर्म का नहीं है। इसके विपरीत तुम्हारा धर्म तो तुम्हें यही सिखाता है कि संसार भर

के सभी प्राणी तुम्हारी ही आत्मा के विविध रूप हैं। समाज की इस हीनावस्था का कारण है इस तत्व को व्यावहारिक आचरण में लाने का अभाव, सहानुभूति का अभाव, हृदय का अभाव।'' समाज पर दोषारोपण से सुधार नहीं होता, केवल आत्म–ग्लानि, हीनता और प्रतिक्रिया ही उत्पन्न होती है। अतः स्वामी जी कहते हैं–

''दोषारोपण या निंदा की भला क्या आवश्यकता? ऐसा कौन सा समाज है जिसमें दोष न हों?.......मानव समाज का सच्चा हितैषी तो वह है जो कठिनाइयों से बाहर निकलने का उपाय बताये।''

संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवार जी ने स्वामी विवेकानन्द की सकरात्मक दृष्टि के आधार पर ही जाति–भेद रहित, वर्णभेद रहित, सामाजिक समता युक्त समाज का एक छोटा नमूना संघ–शाखा के माध्यम से निर्माण करके सबको दिखाया था। वे प्रतिज्ञा पूर्वक कहते थे कि मानस शास्त्र के आधार पर तब तक किसी के द्वारा न अपनाये हुए तंत्र से, सामाजिक समरसता निर्माण की जा सकती है व उस समरसता के फलस्वरूप सामाजिक समता निश्चित रूप से निर्माण की जा सकती है। इसका आधार 'धर्म छोड़ो' या 'जाति तोड़ो' का नारा नहीं था। यद्यपि अंतिम लक्ष्य जाति के अहंकर से मुक्ति थी किन्तु मार्ग लिया जातीय पहचान को 'हिन्दु' भाव में विलीन करना। 'बंधु भाव' के लिए 'राष्ट्र–भाव' आवश्यक है अतः निष्ठा का केन्द्र जाति से हटाकर–'भारत माता' को बनाना। संघ की शाखा, शिविरों व संघ शिक्षा वर्गो में इस समरसता के वातावरण को प्राप्त करने में संघ ने पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली है। 1934 के वर्धा शिविर में महात्मा गांधी ने तथा 1939 के पुणे संघ शिक्षा वर्ग में बाबा साहब ने स्वयं इसका अनुभव किया। बाबा साहब ने कहा था कि ''गति धीमी है'', यह सत्य हो सकता है पर संघ का मार्ग सही है यह आज संघ के प्रयत्नों द्वारा बाबा साहब के स्वप्न को साकार करने के प्रयासों और तथाकथित अम्बेडकरवादियों द्वारा बाबा साहब के किये जा रहे भाष्य के अन्तर से स्पष्ट होता है।

बाबा साहब की तर्क-पद्धति एवं कार्य योजना

बाबा साहब अस्पृश्यता के अपने अनुभव, पश्चिम के खुले वातावरण के वास्तव्य, अपने तुलनात्मक अध्ययन की प्रगल्भता तथा वकील बुद्धि से तथ्यों की चीरफाड व तर्क बुद्धि के आधार पर प्रत्येक विषय पर गहराई से विचार कर कार्य योजना बनाने की क्षमता रखते थे। उनकी तर्क प्रणाली केवल सैद्धान्तिक नहीं थी, भोगे हुए यथार्थ के आधार पर भविष्य की दृष्टि से अनुप्राणित थी। सूत्र रूप में बाबा साहब के चिंतन के आधार बिन्दु इस प्रकार थे–

1. समता मूल मानवीय अधिकार है, कोई दया भाव या सेवाभाव से कृपा पूर्वक अधिकार दे, इस दिखावे की आवश्यकता नहीं है।

2. अस्पृश्यता निवारण तथा समता, बंधुता व स्वतंत्रता सामाजिक आवश्यकता है, किसी राजनीतिक लाभ या संगठन निर्माण की रणनीति का हिस्सा नहीं है।

3. अस्पृश्यता मानवीयता और दलितों पर कलंक है, हिन्दू धर्म या तथाकथित सवर्णों पर कलंक होता तो हिन्दू समाज इसे दूर करने का प्रयत्न करता। इस कलंक को अपने माथे से दलितों को ही हटाना है। इसके लिए उन्होंने उद्‌घोष किया–'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो।'

4. अस्पृश्य समाज की समस्याओं का निवारण करने के लिए उनके दर्द को अनुभव करने वाले उनके ही समाज बंधुओं को अग्रसर होना चाहिए। ये लोग दया या उपकार भाव से नहीं कर्त्तव्य बोध से कार्य करेंगे। इतर समाज के लोग सहयोग करते हैं तो स्वागत है किन्तु उन पर आश्रित रहकर सुधार की आशा में अकर्मण्य नहीं बैठेंगें।

5. जाति व वर्ण व्यवस्था के वर्तमान रूप से सुधार–सम्भव नहीं अतः इनका उच्चाटन प्राथमिक आवश्यकता है।

6. सभी तथाकथित धर्मग्रंथ जो दलित समाज के प्रति अमानुषिक व्यवहार का

समर्थन करते हैं–प्रतीकात्मक रूप से मनुस्मृति का त्याग करना चाहिए। सर्व स्वीकार्य, समाज धारण के उपयोगी सूत्रों का संकलन कर एक मानक पुस्तक 'हिन्दू धर्म शास्त्र' के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

7. हिन्दुओं में पुरोहितवाद को समाप्त करना चाहिए। लेकिन यह असम्भव लगता है तो उसे आनुवांशिक होने से रोक दिया जाए। हर व्यक्ति जो हिन्दू है, पुजारी बनने के काबिल हो। राज्य द्वारा परीक्षा के बाद ही पुरोहित नियुक्त हों अर्थात् पुरोहित योग्यता के आधार पर हों, जाति के आधार पर नहीं।

8. अन्तर्जातीय विवाहों तथा सर्वजाति सहभोजों को प्रोत्साहन दिया जाय।

9. परिवर्तन धीरे–धीरे, सौम्य तरीके से हो, इसे बाबा साहब स्वीकार नहीं करते। वे परिवर्तन के लिए प्रतीक्षा या आश्वासन नहीं चाहते हैं। उनके प्रयत्न 'अभी नहीं तो कभी नहीं' की तर्ज पर थे।

10. परिवर्तन आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक सभी मोर्चों पर एक साथ होना चाहिए। न कि एक के बाद एक या एक को दूसरे पर वरीयता देकर नही।

1935 तक का धर्म-संगर

बाबा साहब ने दलित समाज–जागरण के लिए सभाएँ तथा समाचार पत्र प्रकाशन के साथ हिन्दु समाज के अन्तर्गत कुरीतियों को दूर करने के लिए सत्याग्रह कि मार्ग अपनाया। बाबा साहब कहते हैं कि सत्य क्या है? इसका पता होना चाहिए तथा फिर उसे स्थापित करने का प्रयत्न भी करना चाहिए तभी सफलता मिलती है–

''सत्याग्रह की सफलता उसे करने वाले व्यक्ति के आत्म विश्वास पर निर्भर होती है और आत्म विश्वास ज्ञान और इस विश्वास से आता है कि वह जो कर रहा है, वह पूर्ण सत्य और नैतिक है।...... जहाँ समानता है वहाँ सामुदायिकता है और–जहाँ सामुदायिक भावना है, वहाँ सत्य है। इन सिद्धान्तों की प्रतिस्थापना का कोई भी कदम सत्याग्रह है।...... वास्तव में सत्याग्रह गीता का मूल सिद्धान्त है।'' बाबा साहब के जीवन का यह सत्याग्रह पर्व 'धर्म संग्राम' या 'धर्म–संगर' कहलाता है। इस धर्म संगर में बाबा साहब ने समाज के सामने यक्ष प्रश्न खड़े किये और आह्वान किया कि कोई युधिष्ठिर उनका युक्तियुक्त उत्तर दे। बाबा साहब के प्रश्न इस प्रकार हैं–

(अ) व्यक्ति स्वातंत्र्य व व्यक्ति विकास मनुष्य का नैसर्गिक अधिकार है या नहीं?

''संसार में जन्मे प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के गुणों के आधार पर उन्नति करने का अधिकार है और यदि कोई समाज–व्यवस्था उसे इस अधिकार से वंचित करती हो तो वह समाज व्यवस्था समाप्त कर दी जानी चाहिए।''

किन्तु बाबा साहब को व्यक्ति स्वातंत्र्य की यूरोपीय भौतिकवादी संकल्पना स्वीकार नहीं, बाबा साहब व्यक्ति के जीवन में धार्मिक आधार को आवश्यक मानते हैं। इसके बिना व्यक्ति स्वातंत्र्य और नैतिकता के बीच समन्वय हो ही नहीं सकता। बाबा साहब कहते हैं–

''युवकों की धर्म विरोधी प्रवृत्ति देखकर मुझे दुःख होता है। कुछ लोगों का मानना है कि धर्म अफीम की गोली है, परन्तु यह सत्य नहीं है। मेरे अंदर

जो अच्छे गुण हैं, अथवा मेरी शिक्षा के कारण समाज का जो कुछ हित हुआ होगा, वह मेरे अंतर्मन की धार्मिक भावना के कारण ही है। मुझे धर्म चाहिए, पर धर्म के नाम पर चलने वाला पाखण्ड नहीं।''

बेरार प्रांत अस्पृश्य परिषद (द्वितीय सम्मेलन) अमरावती (13 नवम्बर 1927) में बाबा साहब व्यक्ति विकास की समानता का ही प्रश्न पूछते हैं–

''उन्हें हैरानी होती है कि यदि वे भी हिन्दू हैं तो उन्हें हिन्दुओं की तरह अधिकार क्यों नहीं मिले हैं? वे समानता से जुड़े सवाल करते हैं। वे समानता का यह अधिकार प्राप्त करने के लिए जागरूक हुए हैं। ''

महाड़ सत्याग्रह के समय बाबा साहब कहते हैं–''कृपया यह कतई न समझें कि सत्याग्रह समिति ने आपको महाड़ झील का पानी पीने के लिए बुलाया है। आपने कभी इस पानी का प्रयोग नहीं किया है। ऐसा नहीं है कि यदि हम इसका प्रयोग नहीं करेंगे तो मर जाएँगे। हमारा लक्ष्य यह सिद्ध करना है कि दूसरों की तरह हम भी मनुष्य हैं। यही कारण है कि सामाजिक समानता की स्थापना के लिए यह सम्मेलन बुलाया गया है।'' आगे वे कहते हैं– ''कुछ लोग समानता की संकल्पना पर हँसते हैं। उनका तर्क है कि हर व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक क्षमता अलग होती है। उन्हें समान कैसे माना जा सकता है? लेकिन ये लोग समानता का सही अर्थ नहीं जानते। वे यह नहीं समझते कि दूसरों पर नियंत्रण करने का अधिकार जन्म के आधार पर नहीं दिया जा सकता। यह गुण के आधार पर मिलना चाहिए।''

(ब) हिन्दू समाज के अंग तो अस्पृश्य क्यों ?

यदि तथाकथित स्पृश्य–अस्पृश्य सभी लोग हिन्दू समाज के अंग हैं तो किसी भी व्यक्ति को जो अधिकार प्राप्त है, वे सभी को प्राप्त होने चाहिए। बाबा साहब कहते हैं कि ''ऐसा नहीं है कि छुआछूत से सिर्फ अछूतों को नुकसान हुआ है, इससे सवर्णों को भी नुकसान हुआ है। और सबसे अधिक नुकसान राष्ट्र को हुआ है। जिन लोगों को नीचे देखना पड़ता है, उनका अपमान तो होता ही है, लेकिन जो दूसरों का अपमान करते हैं, वे अपनी नैतिकता का पतन करते हैं।'' बाबा साहब कहते हैं–''ईमानदारी से कहूँ तो छुआछूत इतनी अमानवीय है कि हममें से कई इसे हटाने के लिए अपने प्राण भी दे सकते हैं। स्पृश्यों का मानना है कि हमारे छूने से अपवित्र हुई चीजों को गोमूत्र छिड़कर कर पवित्र किया जा सकता है। आपके ही धर्म के व्यक्तियों के छूने से वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं और उसे एक पशु के पेशाब से पवित्र किया जा सकता है। यह शर्मनाक सोच है।''

''हमारा आन्दोलन असफल भी हो सकता है; लेकिन नुकसान किसका

होगा? स्पृश्यों का! यदि अछूतों को अहसास होगा कि उनके संघर्ष के बावजूद स्पृश्य उन्हें समानता का अधिकार नहीं दे रहे तो वे हिन्दू धर्म छोड़ने को मजबूर हो जाएँगे।......मुझे नहीं लगता कि स्पृश्य हालात को यहाँ तक पहुँचने देंगे।''

बाबा साहब ने इसी आशावाद से प्रेरित होकर हिन्दू समाज में ही दलित बंधुओं को उचित स्थान दिलाने का अभियान चलाया। इसके प्रतीक स्वरूप उन्होंने दो अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया–

1. **समान पनघट** – महाराष्ट्र के एक कर्मठ समाज सुधारक श्री एस.के.बोले ने 1923 में मुम्बई विधान परिषद में यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि ''सरकार द्वारा या सार्वजनिक धन से संचालित संस्थाएँ–अदालत, विद्यालय, चिकित्सालय, कार्यालय, धर्मशाला, कुँआ, जलाशय, पनघट, तालाब इन स्थानों में प्रवेश करने और उनका उपयोग करने का अधिकार सरकार अछूत वर्गों को भी प्रदान करे।'' यह प्रस्ताव 4 अगस्त 1923 को पारित हो गया। इसी आदेशानुसार कोलाबा जिले की महाड़ नगर पालिका ने सन् 1924 में चावदार तालाब (अर्थात् मीठे पानी का जलाशय)से पानी लेने का सबको अधिकार दे दिया। इसके उपरान्त भी इस आदेश की पालना तथाकथित स्पृश्यों ने नहीं करने दी। बाबा साहब ने इसके लिए सत्याग्रह किया। उन्होंने व्यंग्य मिश्रित पीड़ा से कहा–''महाड़ झील सार्वजनिक सम्पत्ति है। महाड़ के सवर्ण इतने दयालु हैं कि उन्होंने सभी को इससे पानी भरने की अनुमति दी; मुसलमान और अन्य धर्मों के लोग भी वहाँ से पानी भरते हैं। यही नहीं सभी जानवरों को भी वहाँ से पानी पीने की छूट है, जिनमें अछूतों के पशु भी शामिल हैं। सवर्ण हिन्दू इतने उदार और शांति प्रिय हैं कि उन्होंने कभी कोई हिंसा नहीं की और न किसी को नुकसान पहुँचाया। इसका कारण यह है कि इस धर्म में अनेक संत पैदा हुए हैं। दूसरों का उपकार करना उनका गुण है और दूसरे को दर्द देना वे पाप समझते हैं। वे गाय जैसे निष्पाप पशुओं के साथ साँप जैसे खतरनाक जीव की भी पूजा करते हैं। ऐसे नेक हिन्दू अपने ही धर्म के लोगों को महाड़ झील से पानी नहीं भरने देते।''

जल, जंगल, जमीन मानवता की साझी धरोहर है, उस पर प्रतिबंध अमानवीय है, अतः महाड़ के चावदार तालाब सत्याग्रह को बाबा साहब ने 'धर्मयुद्ध' कहा। 20 मार्च 1927 को बाबा साहब ने तालाब की सीढ़ियाँ उतर कर जल–प्राशन किया। उत्तेजित तथाकथित सवर्णो ने निहत्थे सत्याग्रहियों पर लाठियों से हमला कर दिया, पंचगव्य से तालाब की शुद्धि की गई। इस

सत्याग्रह की तात्विक भूमिका रखते हुए बाबा साहब ने कहा–

"यह धर्म संगर किसलिए? तो यह इसलिए कि अस्पृश्य हिन्दू भी सवर्ण हिन्दुओं जैसे ही समान योग्यता के अधिकारी हैं, यह तय करने का सवाल पानी प्रकरण के मूल में है।"

मिलिन्द महाविद्यालय के प्राध्यापक ठकार ने एक बार बाबा साहब से पूछा–"बाबा साहब! आप ब्राह्मणों के विरूद्ध क्यों हो?

बाबा साहब ने उत्तर दिया–" My boy, had I been against Brahmins and Hindus, you would not have been here. मेरी संस्था के शिक्षक अधिकतर ब्राह्मण ही हैं। मेरा विरोध ब्राह्मण जाति से नहीं है, पुरोहितवाद से है।"

'अम्बेडकर' यह उनके ब्राह्मण गुरूजी का गोत्र नाम है और ध्यान रहे बौद्ध धम्म दीक्षा के बाद भी उन्होंने इस गुरू प्रसाद का परित्याग नहीं किया।

(2) सबका मंदिर – मंदिर भगवान के होते हैं, भगवान सबके हैं तो मंदिर में सबका प्रवेश प्रतिबंधित क्यों? आप अपने घर में मंदिर बना सकते हैं, जाति का पृथक् ईश मंदिर बनाकर पूजा कर सकते हैं पर जगदीश के मंदिर में सब नहीं जा सकते, यह आश्चर्यजनक है। तथाकथित अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश के लिए पार्वती मंदिर, अम्बादेवी मंदिर, कालाराम मंदिर पर सत्याग्रह हुआ। भगवान के तथाकथित पुजारी भक्तों ने मंदिर के द्वार ही बंद नहीं किये, दर्शनाभिलाषियों पर लाठियाँ भी बरसायी। तल्ख होकर बाबा साहब ने टिप्पणी की– "सत्याग्रही लोग मोहम्मद गजनवी जैसा कुछ करने निकले थे क्या?"

बाबा साहब मंदिर सत्याग्रह की तात्विक भूमिका बताते हैं–

"हिन्दुत्व जितनी स्पृश्यों की सम्पत्ति है उतनी ही अस्पृश्यों की भी है। इस हिन्दुत्व की प्राण प्रतिष्ठा जितनी वशिष्ठ जैसे ब्राह्मणों ने, श्री कृष्ण जैसे क्षत्रियों ने, हर्ष जैसे वैश्यों ने और तुकाराम जैसों ने की है उतनी ही वाल्मिकि, चोखा मेला और रविदास आदि अस्पृश्यों ने की है। इस हिन्दुत्व की रक्षा के लिए हजारों अछूतों ने अपना जीवन न्यौछावर किया है...... हिन्दुत्व के नाम पर बनाये गये मंदिर जितने सवर्णों के हैं, उतने ही अछूतों के भी हैं। उन पर जितना सवर्णों का है, उतना ही अछूतों का भी उत्तराधिकार है।"

क्या उपासक के लिए मंदिर आवश्यक है, क्या मूर्तिदर्शन के बिना उद्धार नहीं होगा? बाबा साहब कहते हैं–"उपासना के अनेक प्रकार हैं। ऐसा नहीं

है कि साकार देवता की प्रत्यक्ष उपासना मंदिर में की जा सके इसलिए अस्पृश्यों को मंदिरों में प्रवेश चाहिए। उन्हें यह सिद्ध करना है कि उनके प्रवेश से मंदिर भ्रष्ट नहीं होते, या उनके स्पर्श से मंदिर की पवित्रता कम नहीं हो जाती ....।"

कुछ लोगों ने प्रश्न किया कि जिन्होंने कभी मंदिर प्रवेश किया ही नहीं, वे अब क्यों दुराग्रह कर रहे हैं। बाबा साहब ने कहा–"मान लीजिए कि कोई किसी विशेष सड़क पर नहीं चलता है तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह उस सड़क का कभी प्रयोग नहीं कर सकता। इसलिए यह कहना मूर्खता पूर्ण है कि चूँकि अछूतों ने कभी मंदिर में प्रवेश नहीं किया था या सार्वजनिक कुओं से पानी नहीं भरा तो वे ऐसा कभी नहीं कर सकते। कानूनी रूप से भी उनकी स्थिति काफी मजबूत है। अछूतों को कोई संदेह नहीं होना चाहिए। अछूतों को स्वयं को भगवान का प्रतिनिधि समझना चाहिए। जिसने हिन्दूधर्म के पुनरूद्धार के लिए जन्म लिया है और इसे मानवता का धर्म बनाने का बीड़ा उठाया है।" बाबा साहब हिन्दुओं की वैचारिक निरर्थकता पर सवाल करते हैं– "हिन्दुओं का आचरण हैरानी भरा है। जब तक कोई व्यक्ति हिन्दू समाज का हिस्सा होता है तब तक छुआछूत का बर्बर नियम, पाप और धर्म, सार्थक और निरर्थक सब उस ही पर लागू होता है। यदि वह हिन्दू धर्म छोड देता है, तो ये नियम उसपर लागू नहीं होता। उसके साथ समान व्यवहार होता है। यही वजह है कि हिन्दू मुसलमानों को अछूत नहीं मानते। अछूत हिन्दू धर्म का ही हिस्सा हैं और यही कारण है कि उनके बर्बर नियम उन्हीं पर लागू होते हैं। ऐसा नहीं है कि अछूतों को इसके बारे में पता नहीं है। उन्हें अच्छी तरह पता है कि यदि कोई अछूत इस्लाम या ईसाई मजहब अपना लेता है तो उसके साथ समान और माननीय व्यवहार किया जाने लगता है। इसके उपरान्त भी अछूत यह सरल मार्ग नहीं अपनाना चाहते। हिन्दू धर्म को छोड़कर उसके पतन का कारण बनने की अपेक्षा वे हिन्दू ही बने रहना चाहते हैं और अपनी सारी ऊर्जा मानवीयता के अधिकार के लिए लड़ने पर खर्च करना चाहते हैं। इसलिए कोई नहीं कह सकता कि उनका आंदोलन केवल उनके फायदे के लिए है। यह हिन्दू धर्म के उद्धार के लिए है। यही सच है। कोई नहीं कह सकता कि अछूतों का आन्दोलन समानता के लिए नहीं है। वे कोई विशेष अधिकार या दर्जा नहीं मांग रहे ....उनकी मांग केवल अछूतों के लिए समान अधिकार की है।"

इस प्रश्न पर कि तथाकथित अस्पृश्य अलग मंदिर क्यों नहीं बना लेते? बाबा

साहब उस समय गोरों और भारतीयों के रेल के एक ही डिब्बे में यात्रा की मांग का उदाहरण देते हुए कहते हैं भारतीयों को भी गोरों के लिए आरक्षित डिब्बों से इतर डिब्बों में यात्रा करने की स्वतत्रंता है अतः "इसका केवल एक ही अन्तर है और वह यह है, यह केवल एक यात्रा की नहीं, बल्कि समानता की बात है। यही कारण है कि अछूत समान मंदिर में ईश्वर की पूजा करने का अधिकार मांग रहे हैं। वे यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि उनके प्रवेश से मंदिर अशुद्ध नहीं होगा, न ही उनके छूने से मूर्ति की पवित्रता भंग होगी। यह एक अलग मंदिर बनाने से प्रमाणित नहीं होगा। इसके लिए जरूरी है कि अछूत उसी मूर्ति की पूजा करें जिसे सवर्ण पूजते हैं, इसके बिना अछूत समानता स्थापित नहीं कर सकते। हमारा कहना है कि भगवान् की पवित्रता हमारे नहीं, बल्कि पापियों के छूने से भंग होती हैं।"

(स) हिन्दू धर्म के सिद्धान्त और व्यवहार में अंतर क्यों ?

बाबा साहब ने कहा है–"हिन्दू धर्म का सिद्धान्त ईसाई और मुस्लिम मजहबों के सिद्धान्तों की अपेक्षा कई गुना अधिक समता के तत्त्व का पोषक है। मनुष्य ईश्वर के पुत्र हैं, केवल यहीं नहीं रूकते हुए वे ईश्वर के ही रूप हैं, ऐसा बड़ी निर्भीकता से हिन्दूधर्म कहता है। जहाँ सारे ही लोग ईश्वर के ही रूप हैं, वहाँ किसी को उच्च और किसी को नीच कहने का भेदभाव सम्भव ही नहीं है, ऐसा इस महान् धर्म का तेजस्वी तत्व है। समानता के सम्राज्य की स्थापना के लिए इससे बड़ा आधार मिलना मुश्किल दिखाई देता है।"

फिर बाबा साहब वर्तमान विसंगति की ओर संकेत करते हैं–"हिन्दू धर्म के दो अंग हैं, एक तत्व ज्ञान, दूसरा आचार। ....धर्म का आचारात्मक भाग उसके तत्वज्ञान से सुसंगत होना चाहिए।"

तत्वज्ञान और आचार की यह असंगति समाज में इस सीमा तक व्याप्त हो गई कि लोगों ने विवेक बुद्धि भी खो दी। व्यवहार की यह विचित्रता तब तक ही रहती है जब तक वह हिन्दू है। मतांतरित हिन्दू पर यह लागू नहीं होती अर्थात् जिसे अपना कहते हैं उसके साथ परायापन और उसके पराया होते ही अपनापन का व्यवहार प्रारम्भ। हिन्दू है तब तक अस्पृश्य और हिन्दू धर्म का त्याग करते ही अस्पृश्यता समाप्त!! ऐसा विचित्र विधान हिन्दू के अतिरिक्त संसार में कहीं दिखायी नहीं देता। अतः बाबा साहब प्रश्न करते हैं–"हिन्दू समाज में पशु अछूत नहीं है, अहिन्दू अछूत नहीं है– लेकिन अस्पृश्यों के लिए केवल अपमान और अवहेलना है।"

इसके लिए धर्माचार्यों, संतों एवं धार्मिक नेतृत्व कर्त्ताओं को आगे आना

चाहिए क्योंकि उनकी बात आज भी अधिसंख्य समाज सुनता है तथा अनुसरण करता है। बाबा साहब कहते हैं–''भारत के अरबपति फकीरों या निर्धन साधुओं को क्यों मानते हैं? भारत का इतिहास बताता है कि धर्म सत्ता का स्रोत है। भारत में धर्म गुरूओं का आम आदमी पर दबदबा है और कई बार तो न्यायाधीश से भी अधिक।''

प्राचीन काल में ऋषियों और जनसाधारण ने भी श्रेष्ठ हिन्दूधर्म के तत्वज्ञान को अपने व्यवहार द्वारा लोगों सिखाया इसलिए इसका वृहत्तर भारत में प्रसार हुआ। जाति व्यवस्था, समुद्र यात्रा बंदी आदि कई प्रतिरोधों ने इस मिशनरी भाव को बाधित किया इसलिए समाज में समस्याएँ उत्पन्न हुईं। बाबा साहब का आकलन है–''एक समय में हिन्दू मिशनरी था यह स्वीकार करना होगा। यदि ऐसा नहीं होता तो भारत में इसका इतना प्रचार नहीं हो सकता था। यह भी स्वीकार करना होगा कि अब यह मिशनरी नहीं रहा।''

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू जीवन का दृष्टिकोण' में कहा है–''सभ्यता अपने आप में अल्पजीवी नहीं है। इसका ऐतिहासिक अभिलेख चार–हजार वर्ष से अधिक पुराना है और उस समय भी यह ऐसी सभ्यता बन चुकी थी जिसने अपना निर्बाध प्रवाह, कई बार धीमा और गतिहीन क्यों न हो, लेकिन आज भी जारी रखा है। चार या पाँच सहस्राब्दियों से अधिक आध्यात्मिक सोच और अनुभव का तनाव एवं दबाव झेलते हुए यह कायम है। इतिहास के अभ्युदय से भारत में विभिन्न नस्लों और संस्कृतियों के लोग आते रहे हैं, लेकिन हिन्दूवाद की श्रेष्ठता कायम रही है। यहाँ तक कि राजनीतिक ताकत के दम पर मतांतरण करने वाले मजहब भी अधिकांश हिन्दुओं पर अपना अनुकरण करने के लिए दबाव नहीं बना सके। हिन्दू संस्कृति के पास ऐसी चेतना है जिसका कुछ अन्य अधिक बलशाली प्रवाहों के पास अभाव है।'' बाबा साहब इस ऐतिहासिक सत्य को स्वीकार करते हुए भी तत्कालीन समाज की अवस्था के आधार पर टिप्पणी करते हैं– ''मुझे लगता है कि सवाल यह नहीं है कि एक समाज जीवित है या मर गया है। सवाल यह कि वह किस स्तर पर जीवित है। अस्तित्व बनाये रखने के कई साधन हैं, पर सभी सम्मानजनक नहीं हैं। ......उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके अस्तित्व की उत्कृष्टता क्या है?'' अतः बाबा साहब कहते हैं–''यदि आप मुझसे पूछें तो मेरा आदर्श समाज समानता, स्वतंत्रता और बंधुभाव के आधार पर बनेगा।''

धर्म संगर का भाष्य

बाबा साहब ने 2 मार्च 1930 को धर्म युद्ध की कसौटी बताते हुए कहा था– ''हिन्दू अपने जैसे आदमियों को 'आदमी' मानने को तैयार है या नहीं, इस दृष्टि से हम उच्च वर्णीय हिन्दू मानस की परीक्षा ले रहे हैं।''

इस परीक्षा में तथा कथित उच्च वर्ण सफल नहीं हुआ। बाबा साहब ने निष्कर्ष निकाला– ''इस सत्याग्रह से यह सिद्ध हुआ कि पत्थर दिल हिन्दुओं का हृदय पसीजना असम्भव है। अब अन्य कोई विचार करने का समय आ गया है।'' तत्कालीन समाज की मानसिकता के सम्बन्ध में उनका आकलन था कि–''अस्पृश्यता, स्पृश्य लोगों के मन की सनक है........अपने मन की इस लहर को स्पृश्य लोग रूढ़ि कहते हैं और उसे अस्पृश्यों पर जबरन लादने की कोशिश करते हैं।'' अंततः निराश बाबा साहब निष्कर्ष निकालते हैं–''हिन्दू धर्म में बने रहकर अस्पृश्यता समाप्त नहीं होगी।'' और 13 अक्टूबर 1935 की येवला परिषद में उन्होंने घोषणा की–

''..................दुर्भाग्य से मैं अछूत जाति में जन्मा हूँ तो यह कोई मेरा अपराध नहीं है। परन्तु मैं हिन्दू के रूप में मरूँगा नहीं।''

इतना कठोर निर्णय करने के बाद भी 'हिन्दू समाज से प्रतिशोध लेने के लिए मतांतरण' की उनकी भूमिका नहीं थी। धर्म संगर असफल हुआ इसकी पीड़ा थी। एक बार मिलिन्द महाविद्यालय के प्राध्यापकों के समक्ष बोलते हुए उन्होंने कहा– ''मैं तो नासिक के कालाराम के दर्शन के लिए सत्याग्रह करने वाला आदमी हूँ। आप लोगों ने मुझे राम से दूर किया।''

मनुस्मृति का दहन करने वाले, हिन्दूधर्म छोड़ने की घोषणा करने वाले का 'येवला–प्रस्ताव' उनके 'जनता' नामक समाचार पत्र के प्रथम पृष्ठ पर दो वर्षों तक छपता रहा। आप उसका शीर्षक सुनकर–आश्चर्य चकित हो जाएँगे, जिन्हें 'मनु विरोधी' कहते हैं उस अखबार का शीर्षक था–''अस्पृश्य समाज को नव–मनु का संदेश''। बाबा साहब ने निष्कर्ष निकाला कि हिन्दू समाज धर्माधिष्ठित है, इसलिए

विषमता का मूल धर्म में हैं। इस विश्वास के कारण वे हिन्दू धर्म छोड़ने का मन बना रहे थे।

स्वामी विवेकानंद भी मानते हैं कि भारत का मूल अधिष्ठान धर्म है–"राष्ट्र के समस्त जीवन में संचार करने वाला एक महत्त्वपूर्ण आदर्श, कह सकते हैं कि वह आदर्श राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ होती है, परन्तु भारत का मेरुदण्ड राजनीति नहीं है, सैन्य शक्ति भी नहीं है, व्यावसायिक आधिपत्य भी नहीं है, और न यांत्रिक शक्ति ही है, वरन् धर्म है। केवल धर्म ही हमारा सर्वस्व है और उसी को हमें रखना भी है। आध्यात्मिकता ही सदैव से भारत की निधि रही है।" समान जानकारी होने पर भी दो व्यक्तियों के निष्कर्ष अलग हो सकते हैं। बाबा साहब जहाँ हिन्दू समाज के दोषों का कारण धर्म को मानते हैं, स्वामी विवेकानंद का आकलन है–"दोष धर्म का नहीं है, धर्म के विस्मरण और आचरण के अभाव का है।"

बाबा साहब ने ज्यों ही हिन्दू धर्म छोड़ने की घोषणा की, अनेक व्यक्ति तथा संस्थाएँ उन्हें अपने मत में लाने के लिए सक्रिय हो गए तो कुछ ने उनसे अपना मत बदलने हेतु आग्रह प्रारम्भ किया। लंदन में श्री ग.आ.गवई बाबा साहब से तीन–चार बार मिले और मतांतरण के सम्बन्ध में उनसे चर्चा की। भारत लौटने पर श्री गवई ने यह खबर प्रसारित की कि 'डॉ. अम्बेडकर इस्लाम मजहब स्वीकार करने वाले हैं।' इस समाचार के प्राप्त होते ही बाबा साहब ने स्पष्ट किया कि, " मैं हिन्दू धर्म का अनुयायी नहीं रहूँगा, वैसे ही मैं इस्लाम मजहब भी स्वीकार नहीं करूँगा।"

बाबा साहब को हिन्दू धर्म छोड़ने के विचार से परावृत करने के लिए मुम्बई हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी समिति की बैठक में एक प्रस्ताव पारित किया गया। उसके पश्चात् मो.वा.वेलकर के नेतृत्व में 24 अक्टूबर 1935 को एक शिष्टमण्डल बाबा साहब से मिला किन्तु उन्हें अपने निश्चय से नहीं डिगा सका। उन्होंने इतना आश्वासन अवश्य दिया कि मेरे किसी भी निर्णय से देश को हानि नहीं होगी। उन्होंने कहा कि "निर्णय के तीन आधार होंगे–प्रथम है देश, द्वितीय अस्पृश्य समाज और उसके बाद आता है हिन्दू समाज।" नवम्बर 1935 में महाराष्ट्र में शुद्धि आंदोलन के नेतृत्वकर्ता विनायक महाराज मसूरकर स्वयं बाबा साहब से मिलने आए। महाराज ने तीन घण्टे तक चर्चा की। अंततः महाराज ने कहा–"यदि हिन्दुस्थान में हिन्दू ही नहीं रहा तो इस देश का नाम हिन्दुस्थान नहीं रह सकेगा।"

बाबा साहब ने उत्तर दिया–"आप की तरह हमें भी खेद है। लेकिन इसके कारणों का निवारण करना तो आपके हाथ में है।" बाबा साहब ने तत्कालीन तथाकथित सवर्ण समाज की मानसिकता बताने के लिए महाराज के सामने एक

चुनौतिपूर्ण प्रस्ताव रखा। श्री माटे गुरूजी के प्रमुख शिष्य, प्रखर हिन्दुत्ववादी, तिलक के अनुयायियों द्वारा अस्पृश्यों के घोषित नेता, मातंग समाज के श्री के.के. सकट का महाराष्ट्र में नाम तथा सम्मान था। बाबा साहब ने कहा कि ''आप श्री सकट को एक वर्ष के लिए शंकराचार्य बना दीजिए। मैं अपने सहयोगियों सहित उनकी पाद–पूजा करने को तैयार हूँ, आप पुणे के सौ चितपावन ब्राह्मणों को उनके पाँव पखारने के लिए तैयार कर दीजिए। यदि आप इतनी छोटी सी बात करवा सकें तो हम उसे आपके मन में समानता के लिए उमड़ी हुई आस्था का प्रतीक मान लेंगे और धर्म–परिवर्तन का अपना निर्णय स्थागित कर देंगे।''

नासिक में एक आम सभा के समय श्री रा.ग.प्रधान के नेतृत्व में हिन्दुओं के एक शिष्ट मण्डल ने बाबा साहब से भेंट की, किन्तु बाबा साहब ने स्पष्ट कहा–''आज की पीढ़ी रानडे, गोखले, तिलक के समान ध्येयनिष्ठ न होने से हम सब बहुत निराश हैं।''

इन्हीं दिनों पीर जमात अली भी बाबा साहब से मिले और बाद में उनके इस्लाम मत में आने की अफवाह फैला दी, जिसका बाबा साहब ने खण्डन किया।

अमृतसर में 13–14 अप्रैल 1935 में सिख मिशनरी परिषद के सम्मेलन में बाबा साहब गए थे। अपने भाषण में उन्होंने कहा–''सिख समाज में सामाजिक समता के तत्व हैं, इसे मैं जानता हूँ। किन्तु हमारे मतांतरण का समय अभी निश्चित नहीं हुआ हैं।''

बाबा साहब का यह रूख देखकर–महात्मा गाँधी के अनुयायी सेठ वालचंद हीराचंद ने उन्हें गांधी जी से मिलने का विशेष आग्रह किया। बाबा साहब सेगाँव जाकर गांधी जी से मिले, किन्तु इसके कोई सार्थक परिणाम नहीं निकले। वहाँ से लौटते समय वर्धा स्थानक पर दलित समाज के हजारों लोग बाबा साहब के दर्शन हेतु एकत्रित थे। सेठ वालचंद हीराचंद ने आश्चर्य के साथ पूछा–''इन लोगों के लिए हम लाखों रूपये खर्च करते हैं, लेकिन ये लोग हमारी परवाह ही करते।'' सहज ही बाबा साहब के मुँह से निकला–''इन्हें माता और दाई का अंतर अच्छी तरह मालूम है।''

10 जून 1936 को श्रीलंका के बौद्ध भिक्षु लोकनाथ ने मुम्बई में बाबा साहब के निवास 'राजगृह' में उनसे भेंट कर बौद्ध धर्म स्वीकार करने का आग्रह किया। किन्तु बाबा साहब ने उनके समक्ष अपना निश्चित मत प्रकट नहीं किया।

18 जून 1936 को हिन्दू महासभा के नेता डॉ. मुंजे उनसे मिले तथा मतांतरण करना ही है तो सिख धर्म स्वीकार करने का आग्रह किया। डॉ. मुंजे ने एम.सी. राजा

को एक व्यक्तिगत पत्र लिखा था, जिसे गांधी जी ने प्रकाशित करने को विवश किया, उसमें लिखा था कि–''यदि डॉ. अम्बेडकर सिख धर्म को स्वीकार करते हैं, तो नव सिख के रूप में भी उन्हें पुणे के समझौते के अनुसार प्राप्त अधिकार मिलते रहें। इस पर हिन्दुमहासभा को कोई आपत्ति नहीं होगी।''

इस निवेदन में बाबा साहब ने लिखा है, ''मुस्लिम या ईसाई मजहब का अंगीकार करने से अस्पृश्य भारतीय संस्कृति से अलग हो जाएँगे, लेकिन सिख धर्म को स्वीकार करने से वे हिन्दू संस्कृति से जुड़े रहेंगे।''

येवला परिषद की घोषणा के पश्चात् हैदराबाद के निजाम ने अस्पृश्य समाज के इस्लाम स्वीकार करने की सफलता के लिए पाँच करोड़ रूपयों की व्यवस्था कर रखी थी।

मुम्बई के मेथोडिस्ट एपिस्कोपल चर्च के बिशप ब्रैडले ने कहा कि यदि दलित समाज उच्च स्तर का जीवन जीना चाहता हो तो ईसाई मजहब उनका स्वागत करेगा। बिशप जे.डब्ल्यू. पिकेट और ईस्ट स्टेन्ले जोंस कई बार बाबा साहब से मिले और ईसाई मत ग्रहण करने का आग्रह किया। गाडफ्रे ई. फिलिप्स ने जुलाई 1936 में 'दी अनटचेबल्स क्वेस्ट' नामक एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में इस बात का विस्तार से वर्णन है कि अस्पृश्य समाज के ईसाईकरण के लिए ईसाई मिशनरियों को क्या करना चाहिए।

बाबा साहब के मतांतरण की घोषण के पश्चात् गाँधीजी ने लिखा–''अस्पृश्यता आखरी सांसे गिन रही है। डॉ. अम्बेडकर जैसे विद्वान् उच्च शिक्षाविद् युवक का कविठा और अन्य स्थानों में हुए अत्याचारों के कारण क्रोधित होना स्वाभाविक है। धर्म किसी घर या परिधान की तरह नहीं है, जो जब चाहे बदला जा सके।''

महात्मा गांधी का वक्तव्य पढ़कर बाबा साहब ने कहा–''हमने अभी यह तय नहीं किया है कि हम किस धर्म को स्वीकार करेंगे। लेकिन सब तरफ से सोच–विचार करने पर विश्वास हो गया है कि हिन्दु धर्म हमारी तरक्की में किसी तरह बढ़ावा नहीं दे सकता। वह हमारी उन्नति का पोषक नहीं है।''

14 जनवरी 1936 को गुलाम भीकानाइरांगा, डॉ. दुर्रानी, मोलवी जकारिया आदि ने भेंट कर इस्लाम स्वीकार करने का आग्रह किया।

बाबा साहब का प्रारम्भ से ही मतांतरण के बारे में दृष्टिकोण स्पष्ट था। सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए ही उन्होंने यह निर्णय लिया था। हिन्दू समाज की तरह ईसाईयों व मुसलमानों में भी जाति भेद था। अस्पृश्य का ईसाई या

मुसलमान होने पर उसकी अस्पृश्यता समाप्त नहीं होती थी। इसका सामान्य कारण था भारत के ईसाई व मुस्लिम हिन्दु समाज से ही मतांतरित थे। इन्होंने पूजा पद्धति बदली पर जाति नहीं। तथाकथित अस्पृश्य समाज से ईसाई बने लोगों के चर्च, पादरी अलग थे। इनके स्वीकार से इसी कारण सामाजिक समता, सामाजिक न्याय प्राप्त होने वाला नहीं था।

1935 में बाबा साहब ने जब हिन्दू धर्म छोड़ने की घोषणा की, देश की राजनीतिक स्थिति कैसी थी? तीन गोलमेज सम्मेलन हो चुके थे। 1935 का भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act) पारित हुआ था। सत्ता परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी। बाबा साहब की भूमिका तब यह थी कि, अस्पृश्य वर्ग को अल्पसंख्यक का दर्जा दिया जाए, उन्हें पृथक निर्वाचन क्षेत्र दिए जाएँ, उनके लिए संवैधानिक प्रावधान किए जाएँ। उसी समय मुस्लिम लीग का आन्दोलन भी जोरों पर था। मुस्लिम लीग धीरे–धीरे पाकिस्तान की माँग की ओर बढ़ रही थी। उसे मजहब के आधार पर देश का विभाजन कराना था। बाबा साहब का दृष्टिकोण यह था कि देश में स्वाधीनता का संघर्ष सतही तौर पर भले ही अंग्रेजों के विरूद्ध दिखाई दे रहा हो किन्तु वह वैसा नहीं है। इस देश पर राज कौन करें? हिन्दू या मुसलमान? यह इस संघर्ष का स्वरूप था। अस्पृश्य स्वयं को दुर्बल न समझें। यदि वे हिन्दुओं के पक्ष में खड़े रहे तो हिन्दुओं का संख्या बल बढ़ेगा और मुसलमानों के पक्ष में खड़े रहे तो मुसलमानों का संख्या बल बढ़ेगा। इस प्रकार बाबा साहब का निर्णय न केवल सामाजिक न्याय की दृष्टि से महत्वपूर्ण था बल्कि तत्कालीन राजनीति की दिशा तथा देश का भविष्य निर्धारित करने वाला था।

मुम्बई में 31 मई 1936 को 'अखिल मुम्बई क्षेत्र महार परिषद' में बाबा साहब ने धर्मांतरण के सम्बन्ध में अपनी भूमिका के सम्बन्ध में एक विस्तृत भाषण दिया। इस भाषण में उन्होंने अस्पृश्य लोग कौन सा धर्म स्वीकार करें यह नहीं बताया किन्तु भाषण के अंत में उन्होंने भगवान् बुद्ध का स्मरण किया और एक तरह से उनके मन में कौन सा धर्म है, इसे बताया। उन्होंने कहा–''मुझे इस अवसर पर भगवान बुद्ध का निर्वाण के पूर्व अपने भिक्षु संघ को दिया गया उपदेश और जिसका महापरिनिर्वाण सूत्र में उल्लेख किया गया है, उसका स्मरण होता है। निर्वाण के पूर्व भगवान गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि, 'आप दीप की तरह स्वयं प्रकाशित बनें; पृथ्वी की तरह पर प्रकाशित न हों! स्वयं पर विश्वास रखें, अन्य किसी के दास न बनें! सत्य पर चलें, और किसी अन्य की शरण में न जाएँ। ''

अस्पृश्य लोगों को बौद्ध धम्म के मार्ग से ले जाने का बाबा साहब का निर्णय परिपक्व होता गया और अंत में 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में लाखों अनुयायियों

के साथ उन्होंने बौद्ध धम्म की दीक्षा ली।

बाबा साहब की राष्ट्र भक्ति व विभूतिमत्ता के दर्शन इस मतांतरण प्रसंग में होते हैं। इस संदर्भ में दो बातों का स्मरण रखना चाहिए।

1. 1935 में हिन्दू धर्म छोड़ने की घोषणा और इसकी क्रियान्विति में इक्कीस वर्ष का अंतराल है। 6 दिसम्बर 1956 को बाबा साहब का परिनिर्वाण हुआ। अर्थात् अपना अंतिम समय निकट जानकार मृत्यु से मात्र लगभग डेढ़ माह पूर्व उन्होंने अपने संकल्प की पूर्ति की। हिन्दू समाज को अपनी गलतियों की अनुभूति, परिमार्जन व परिष्कार के लिए इतनी दीर्घ अवधि–सतत् अपमान के घूंट पीकर भी बाबा जैसे महामानव ही दे सकते थे। दुर्भाग्य से हिन्दू समाज इस अवधि का सदुपयोग न कर सका।
2. बाबा साहब ने भारत–उद्भूत बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। ईसाईयत और इस्लाम वैश्विक वृहत् आधार रखते थे, उनका प्रबल आग्रह व प्रयत्न भी था किन्तु बाबा साहब ने इन्हें स्वीकार नहीं किया। इतना ही नहीं हिन्दू महासभा के डॉ. मुंजे के आग्रह पर 18 जून 1936 को बाबा साहब ने लिखित में कारण प्रकट किया तथा उसे प्रकाशित करवाया–''........अस्पृश्य यदि इस्लाम या ईसाई मजहब स्वीकार करते हैं तो वे हिन्दू धर्म की कक्षा से बाहर चले जाते हैं.......''

फिर चुटकी लेते हैं– ''हिन्दुओं का यह कोई छोटा–मोटा लाभ नहीं है।'' इस संदर्भ में उनके जीवनीकार – धनंजय कीर लिखते हैं कि ''उनके मन की भावना की प्रतिध्वनि प्रकट करने वाले उनके संस्मरणीय शब्दों को किसी को भूलना नहीं चाहिए। ''यदि मन में द्वेष होता व बदला लेने की भावना होती तो पाँच वर्ष में ही मैंने इस देश का सत्यानाश कर दिया होता।' हिन्दू संस्कृति को न छोड़ने की उनकी सावधानी अथवा 'जो धर्म देश की प्राचीन संस्कृति को खतरा उत्पन्न करेगा अथवा अस्पृश्यों को अराष्ट्रीय बनायेगा, ऐसे धर्म को मैं कभी स्वीकार नहीं करूँगा, क्योंकि इस देश के इतिहास में मैं अपना उल्लेख विध्वंसक के नाते करवाने का इच्छुक नहीं हूँ।' उनके ये तेजस्वी विचार यही सिद्ध करते हैं कि अम्बेडकर का धर्म इस देश की संस्कृति, इतिहास व परम्परा से विसंगत नहीं हो सकता।''

11 जनवरी 1950 को मुम्बई में हुए अपने सम्मान समारोह में बोलते हुए उन्होंने कहा–''यह कहकर पिछले बीस वर्षो से मेरी निंदा की जा रही है कि मैं ब्रिटिशों का बगल बच्चा हूँ, मुसलमानों की ओर मेरा झुकाव है। अब मुझे लगता है कि संविधान निर्माण के मेरे कार्य को देखकर–हिन्दू मुझे अच्छी तरह जानेंगे व

यह अनुभव करेंगे कि मेरे ऊपर लगाये गये आरोप किस कदर झूठे थे।" एक अन्य प्रसंग पर बाबा साहब ने कहा–"मेरी आलोचना में यह कहा जाता है कि मैं हिन्दू धर्म का शत्रु हूँ, विध्वंसक हूँ। लेकिन एक दिन ऐसा आएगा, जब लोग यह अनुभव करेंगे कि मैं हिन्दू समाज का उपकार कर्त्ता हूँ और तब वे मुझे धन्यवाद देंगे।"

बौद्ध धर्म में दीक्षा के पीछे अपने उद्देश्य को प्राकांतर से उन्होंने बार–बार प्रकट किया है। वे कहते हैं–"एक बार गाँधी जी से अस्पृश्यता के सवाल पर चर्चा करते समय मैंने कहा था कि अस्पृश्यता के विषय पर आपसे मतभेद होने के उपरान्त भी जब समय आएगा, तब मैं इस देश को कम से कम धक्का पहुँचाने वाला मार्ग ही स्वीकार करूँगा, इसलिए बौद्ध धर्म स्वीकार करके मैं इस देश का अधिकाधिक हित साध रहा हूँ, क्योंकि बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का ही एक भाग है। मैंने यह सावधानी रखी है कि इस देश की संस्कृति व इतिहास की परम्परा को धक्का न पहुँचे।"

ध्यान में रखना चाहिए कि ये बाबा साहब के पूर्ण परिपक्व, अपरिवर्तनीय विचार हैं, क्योंकि नागपुर में बौद्ध धम्म की दीक्षा के अवसर पर प्रकट किये गये थे तथा इसके एक माह 23 दिन पश्चात् आपका महा प्रयाण हो गया था।

दलित समाज को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए 1935 तक के असफल आन्दोलनों तथा धर्मान्तरण की घोषणा के पश्चात् जीवन के उत्तरार्ध में वे हिन्दूधर्म की कठोर आलोचना करते हुए दिखायी देते हैं। तथाकथित अम्बेडकरवादी इसी समय के कथनों का उल्लेख कर बामसेफ तथा 'मूल निवासी संघ' के रूप में भ्रम का वातावरण फैलाते दिखायी देते हैं। उनकी आलोचना भी सुधार के लिए है। स्वामी विवेकानंद ने भी पुरोहितवादी पाखण्ड तथा अमानवीय अस्पृश्यता की कटु आलोचना की है। एक भोगी हुई पीड़ा की पराकाष्ठा तथा दूसरे दृश्यानुभूति से उत्पन्न संवदेना से उत्पन्न आक्रोश की अभिव्यक्ति कटुक्तियों की आघात चिकित्सा (Shock Treatment) के रूप में करते हैं। टीकाकारों का आक्षेप है कि बाबा साहब के विचार क्रमशः विकसित हुए और सकारात्मक अम्बेडकर की प्रस्तुति करने वाले लोग उनके जीवन के पूर्वार्द्ध के कथनों से उद्धरण देकर उनका 'हिन्दूकरण' कर रहे हैं, इसलिए तथाकथित अम्बेडकरवादियों द्वारा प्रस्तुत हिन्दु धर्म विरोधी चरित्र के उद्धरण परिपक्व विचारों के द्योतक हैं। किन्तु सूक्ष्म तथा निरपेक्ष शोध करने पर 'विचारों की उत्क्रांति' का सिद्धान्त जमता नहीं। इससे यह अर्थ निकलता है कि महाड़ धर्म संगर के समय उनके विचार परिपक्व नहीं थे तथा उस समय तक उनका हिन्दू धर्म शास्त्रों का अध्ययन आधा–अधूरा था। ये दोनों ही बातें यद्यपि सत्य नहीं हैं फिर भी इसे स्वीकार कर लिया जाय तो संविधान सभा

के निर्माण के पश्चात् से परिनिर्वाण तक के उनके कथनों, कार्यों का पुनरावलोकन ऐसे लोगों को करना चाहिए।

महाड़ धर्म–संगर और नासिक के कालाराम मंदिर का सत्याग्रह करते हुए उन्होंने एक मार्ग का प्रयोग किया था। हिन्दू समाज के दुर्भाग्य से वह प्रयोग यशस्वी नहीं हो सका। जब उन्होंने दूसरे मार्ग का प्रयोग प्रारम्भ किया तो उस मार्ग के अनुरूप तर्क प्रणाली का प्रयोग किया। इस समय उन्होंने अपने नवीन मार्ग के प्रति एकांतिक निष्ठा के अन्तर्गत अपनी हिन्दू धर्माभिमानी भूमिका छोड़ दी क्योंकि उनका ध्येय हिन्दू धर्म का खण्डन–मण्डन नहीं था। दलित समाज के उत्थान के संदर्भ में प्रसंगवश इसकी मीमांसा की है। उन्हें अस्पृश्यों की मुक्ति का मार्ग जिधर दिखायी दिया, उधर ही उन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगायी। दलित समाज के हित में उन्होंने व्यक्तिगत मान–अपमान की भी चिंता नहीं की। अनुसूचित जातियों को पृथक निर्वाचन के विरोध में गांधी जी ने आमरण अनशन किया था। इसका समाधान खोजने के लिए मुम्बई में 19 सितम्बर 1932 को परिषद हुई। जिन पर देश भर से प्रचण्ड दबाव था, अखबार आलोचना से भरे थे, अस्पृश्यों की लड़ाई में अकेले थे किन्तु वे अस्थिर नहीं हुए, अपना धैर्य और ध्येय नहीं छोड़ा, इसमें बाबा साहब ने कहा–''मैं इस घटना का खलनायक बनूँ, यह मेरे भाग्य में आया है, यह सच है। लेकिन आप ध्यान में रखें कि मैं अपने पुण्य कर्म से रत्तीभर भी नहीं हटूँगा और मेरे अस्पृश्य बंधुओं के न्यायपूर्ण व वैध अधिकारों का घात नहीं करूँगा। चाहे आप मुझे निकट के बिजली के खम्भे पर फाँसी ही क्यों न चढ़ा दें।''

द्वितीय पथः राजनैतिक आन्दोलन

देश की राजनैतिक स्वाधीनता की लड़ाई में बाबा साहब कांग्रेस के साथ नहीं थे। अम्बेडकर जी का सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ हुआ उस समय कांग्रेस के अघोषित सूत्र संचालक गाँधी जी थे। अंग्रेजों का विरोध ही देश भक्ति है, और अंग्रेजी कानून तोड़कर जेल यात्रा करके आना ही स्वाधीनता संग्राम है' ऐसी जिनकी कल्पना है, उन्होंने बाबा साहब को अंग्रेजों का पिट्ठू, राष्ट्रीय आन्दोलन तथा हिन्दू समाज को कमजोर करने वाला कहा है। अरूणशौरी की पुस्तक Worshiping false gods (झूठे देवों की पूजा) इसी चिंतन प्रणाली का उदाहरण है। अपनी राजनैतिक गतिविधियों के सम्बन्ध में बाबा साहब की भूमिका क्या थी? 1939, मुम्बई विधान परिषद में भाषण देते हुए उन्होंने बताया–

''देश और मैं, इन दोनों में मेरी प्राथमिकता देश की होगी, मगर देश और दलित समाज में विरोध निर्मित हुआ तो मैं दलितों का पक्ष लूंगा, यह भूमिका ध्यान में रखनी चाहिए।''

राजनीतिक चौसर पर शह–मात के खेल में अंग्रेजों ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को ही प्रतिनिधि मान सत्ता हस्तांतरण की ओर क्रमशः बढ़ने की प्रक्रिया को बाबा साहब सतर्क, सूक्षम दृष्टि से देख रहे थे। बाबा साहब हिन्दू समाज के तथाकथित उच्च्य वर्गों से निराश हो चुके थे। अतः बाबा साहब को लगा कि यह अवसर चूके तो सत्ता मुस्लिमों या उच्च्य वर्गीय हिन्दुओं के हाथ में जाएगी और सदियों से दलित समाज को पुनः अधिकारों से वंचित, प्रताड़ना का नारकीय जीवन जीना पड़ेगा।

बाबा साहब के समक्ष तीन प्रश्न थे–

1. अंग्रेज भारत से विदा होते समय सत्ता किसे सौंपेंगे?
2. इस सत्ता में अस्पृश्यों का स्थान होगा या नहीं?
3. देश का कानून अस्पृश्यों को सामाजिक न्याय दिलायेगा या नहीं?

सायमन कमीशन :–1935 तक के आन्दोलनों के परिणाम से उन्हें विश्वास हो

गया था कि जब तक अस्पृश्यों को राजनीतिक सत्ता में सहभागी नहीं किया जाता, उनके हाथ में नीति निर्माण व क्रियान्वयन की ताकत नहीं आ सकती, और इसके बिना सामाजिक न्याय की सम्भावना नहीं है। इसी भूमिका से उन्होंने सायमन कमीशन के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत किया। सायमन कमीशन के समक्ष बाबा साहब का साक्ष्य 23 अक्टूबर 1927 को हुआ। इसमें हुए प्रश्नोत्तर के प्रमुख मुद्दे इस प्रकार थे:–

1. स्वतंत्र प्रतिनिधित्व की मांग अस्पृश्य वर्ग के लिए ही है।
2. हमें हिन्दू समाज से पृथक स्वतंत्र अल्पसंख्यक माना जाए।
3. भारत की किसी भी अन्य अल्पसंख्यक जाति की तुलना में अस्पृश्य वर्ग को अधिक राजनीतिक संरक्षण मिले, क्योंकि यह वर्ग अशिक्षित, पिछड़ा तथा राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से दुर्बल है।
4. सरकारी नौकरियों में अस्पृश्य वर्ग को अधिक प्रतिनिधित्व मिले।
5. हम पर हिन्दू कानून लागू होता है (अर्थात् कानूनी दृष्टि से हम हिन्दू हैं)

प्रथम गोलमेज सम्मेलन:–

यह सम्मेलन 1930 में लंदन में हुआ। इस सम्मेलन से पूर्व 8, 9 अगस्त 1930 को नागपुर में ऑल इण्डिया डिप्रेस्ड क्लासेस कांग्रेस' (AIDCC)का प्रथम अधिवेशन हुआ। इसमें बाबा साहब का 25 पृष्ठ का भाषण हुआ जो 'अस्पृश्यों के राजनैतिक अधिकार' का दस्तावेज है। इसके प्रमुख मुद्दे इस प्रकार थे–

1. देश का संविधान देश भक्ति की नींव पर बनना चाहिए।
2. केवल उच्च वर्ण व वर्ग के हाथ में राज काज के सूत्र न हों।
3. राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए अस्पृश्य वर्ग सतर्क रहे।
4. अधिकार के सूत्र अस्पृश्यों के हाथ में होने पर ही उनके साथ न्याय सम्भव है।
5. अस्पृश्यों को जनसंख्या के अनुपात में राजनीतिक प्रतिनिधित्व मिले।
6. अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित चुनाव क्षेत्र तथा वयस्क मतदान प्रणाली हो।
7. सरकारी राज्य व्यवस्था में पर्याप्त संरक्षणात्मक स्थान मिलें।
8. स्वराज्य की स्थापना आवश्यक व उचित है।
9. कानून अवज्ञा आंदोलन में अस्पृश्य भाग न लें क्योंकि यह दो पक्षों में सत्ता छीनने का आंदोलन है, इससे हमें कुछ नहीं मिलेगा।
10. अस्पृश्यों को अधिक अधिकार देकर औपनिवेशिक राज्य व्यवस्था की जाए।

इस भाषण तथा साइमन कमीशन के समक्ष भूमिका के कारण बाबा साहब

की तीव्र आलोचना हुई किन्तु ऐसी आलोचनाओं का उत्तर देते हुए उन्होंने 'बहिष्कृत भारत' में लिखे लेख में तीन मुद्दे प्रमुखता से उठाये–

1. अस्पृश्य हिन्दू धर्म में तो हैं पर हिन्दू समाज में नहीं हैं।
2. इन दोनों की संस्कृति एक होने पर भी उनके हित अलग–अलग हैं।
3. अस्पृश्यों के लिए क्या मंदिर खुले किए गए? क्या विश्वविद्यालय खुले कर दिए गए?
4. अस्पृश्य समाज हिन्दुओं से पृथक होने पर हिन्दू समाज कमजोर होगा, हिन्दू मुस्लिम संस्कृति के संघर्ष में हिन्दू नष्ट होंगे, ऐसा हमें दिखाई देता है। लेकिन, हिन्दू समाज का क्या होगा, इसका विचार अस्पृश्य समाज क्यों करे?....... हिन्दू समाज की नीति सारी दुनिया की नीति से बिल्कुल विपरीत है। अन्य समाजों में बाहर का व्यक्ति आया तो उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। हिन्दू समाज में अंदर का व्यक्ति बाहर गए बिना सम्मान नहीं पाता।

बाबा साहब अस्पृश्य वर्ग के हितों की चिंता करते हैं इसका तात्पर्य वे हिन्दू विरोधी हैं, ऐसा नहीं है। साइमन कमीशन का विरोध कर कांग्रेस ने पंडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में, भारत का भावी संविधान कैसा हो, इसका निर्णय करने के लिए एक समिति गठित की। इस समिति के प्रतिवेदन का विश्लेषण करते हुए बाबा साहब ने 'बहिष्कृत भारत' के 18 जनवरी 1929 के अंक में 'नेहरू समिति की योजना व हिन्दुस्थान का भविष्य' शीर्षक से सम्पादकीय लेख लिखा। इस लेख में बाबा साहब ने प्रश्न उठाया है कि नेहरू समिति ने जो सुविधाएँ मुसलमानों को दी, वे अस्पृश्यों को क्यों नहीं दी? जबकि ''अस्पृश्य वर्ग अत्यंत पिछड़ा व असंगठित होने से उस वर्ग को संरक्षण आवश्यक है। सबसे अधिक अल्पसंख्यक यदि कोई है तो वे अस्पृश्य लोग हैं।'' 1917 का लखनऊ समझौता' देश विभाजन की नींव रखने वाला समझौता हैं। नेहरू समिति ने इससे भी आगे बढ़कर सिंध को पृथक प्रांत बनाने, बलूचिस्तान व सीमाप्रांतों को अधिक स्वायत्तता देने तथा भाषा आधारित प्रांत रचना करने का सुझाव दिया। बाबा साहब की राय थी कि समिति का यह सुझाव मुसलमानों के बहुसंख्या वाले प्रांत निर्माण करने व उन प्रांतों में हिन्दुओं को बंधक बनाने की कुटिल चाल है।

बाबा साहब का यह सम्पादकीय कई दृष्टि से अध्ययन करने लायक है। इस सम्पादकीय में बाबा साहब के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। वे संविधान विशेषज्ञ, अस्पृश्यों के हितरक्षक हैं तो महान् देशभक्त और हिन्दुस्तान के हितों की चिंता करने वाले भी हैं। वे इसी सम्पादकीय में लिखते हैं–''यह पड़ताल हमने स्वार्थ में अंधे होकर नहीं की है, नेहरू समिति ने अस्पृश्यों पर अन्याय किया इसलिए नहीं की है। उससे हिन्दुओं को खतरा एवं हिन्दुस्थान पर संकट है, इसलिए हमने इसका

विरोध किया है।''

प्रथम गोलमेज परिषद में जाने से पूर्व बाबा साहब ने अपनी भूमिका रखी–''दलित वर्गो का सवाल सामाजिक सवाल है और इसका हल राजनीति के अतिरिक्त और किसी अन्य क्षेत्र में किया जाना चाहिए, ऐसा यदि आप तय करेंगे तो उससे हमारा तीव्र विरोध है। राजनीतिक सत्ता में हिस्सा मिले बिना दलित वर्ग की समस्या हल नहीं होगी।''

गोलमेज परिषद के भाषण में बाबा साहब ने कहा–''उच्च वर्ग के राजनीतिक आंदोलन में आए विद्वान नेताओं ने अपनी जातीय, संकुचित वृत्ति नहीं छोड़ी इसलिए हमारे दुःख हमारे सिवा कोई दूर नहीं कर सकेगा। हमारे हाथ में राजनीतिक सत्ता आए बिना वह सम्भव नहीं है। यह चमत्कार होने के मार्ग की प्रतिक्षा करते–करते दलित वर्ग थक चुका है, यह मैं आपको साफ–साफ बताना चाहता हूँ।''

उपरोक्त विवरणों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि बाबा साहब की भूमिका 'वयं पंचाधिकम् शतम्' की लगती है। हिन्दू समाज के अन्तर्गत वे अपने अधिकारों का धर्मयुद्ध तो लड़ते ही हैं, बाह्य आक्रमण पर उसी हिन्दू समाज की रक्षा के लिए अपने तर्क–तरकश से बाणों का सुरक्षा कवच भी बनाते हैं।

द्वितीय गोलमेज परिषदः–

दूसरी गोलमेज परिषद सितम्बर 1930 से जनवरी 1931 के दौरान हुई। प्रथम गोलमेज सम्मेलन का कांग्रेस ने बहिष्कार किया था, इस सम्मेलन में महात्मा गाँधी उपस्थित थे। महात्मा गाँधी की भूमिका थी कि अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व वे ही करते हैं, अम्बेडकर जी नहीं। साथ ही वे अस्पृश्यों के पृथक् निर्वाचन के विरुद्ध थे। 14 अगस्त 1931 को गाँधीजी व अम्बेड़कर जी की इसी पार्श्व भूमि में प्रथम भेंट हुई। गांधी जी का कहना था कि ''हिन्दू मुस्लिम समस्याओं की अपेक्षा मैं अस्पृश्यता की समस्या को अधिक संवेदनशील मानता हूँ...।'' बाबा साहब ने कहा–''कांग्रेस को यदि यह समस्या इतनी महत्वपूर्ण लगती तो कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए खादी पहनने की जिस तरह शर्त है वैसी अस्पृश्यता निवारण के लिए कोई शर्त रखी होती।'' बाबा साहब ने गाँधी जी से कहा कि ''मेरी कोई मातृभूमि नहीं है'' (क्योंकि) '' इस देश में कुत्तों जैसा जीवन भी हम जी नहीं सकते...... इस बारे इस देश ने हम पर इतना अक्षम्य अपराध किया है कि हम यदि कोई भी व किसी भी तरह का भयंकर द्रोह करें तब भी उससे होने वाले पाप की जिम्मेदारी हमारे सिर नहीं आएगी...... राष्ट्र की हानि यदि मैंने न की हो अथवा न करने वाला हूँ तो उसका श्रेय हमारे बोध के विवेक को ही है। उसी को प्रेरणा से राष्ट्र का अकल्याण न करते हुए मेरी अस्पृश्य जनता के अधिकार मैं किस प्रकार प्राप्त करूँ

इस चिंता में हूँ।''

यह दूसरी गोलमेज परिषद बाबा साहब के सामाजिक न्याय के संघर्ष में एक स्वतंत्र अध्याय है। इस परिषद में बाबा साहब की भूमिका वही थी जो प्रथम परिषद के समय थी। उन्होंने कहा–''अस्पृश्य समाज को राजनैतिक दृष्टि से मुसलमानों व सिखों की तरह स्वतंत्र इकाई के रूप में माना जाना चाहिए....... जनसंख्या के अनुपात में समस्त प्रांतीय और केन्द्रीय मंत्रिपरिषद में विशिष्ट प्रतिनिधित्व के रूप में स्थान मिलने चाहिए तथा पृथक निर्वाचन क्षेत्र मिले....... अस्पृश्य वर्ग को अवर्ण हिन्दू, प्रोटेस्टेण्ट हिन्दू व नोन कन्फार्मिस्ट हिन्दू कहा जाए।''

गाँधी जी की भूमिका इसके विपरीत थी–

1. कांग्रेस सभी जातियों के लोगों की एकमात्र प्रतिनिधि है।
2. अस्पृश्यता निवारण और हिन्दू मुस्लिम एकता दोनों कांग्रेस के प्रमुख लक्ष्य हैं।
3. कांग्रेस का मैं एकमात्र प्रतिनिधि हूँ।
4. मुसलमानों एवं सिखों को स्वतंत्र प्रतिनिधित्व देना मुझे स्वीकार है।
5. अस्पृश्यों को स्वतंत्र प्रतिनिधित्व देना मुझे स्वीकार नहीं, मैं इसका कड़ा विरोध करूँगा।

गाँधीजी का कहना था कि ''अस्पृश्य हिन्दू समाज के अभिन्न अंग होने के कारण उन्हें हिन्दुओं से अलग करने के मैं विरूद्ध हूँ।'' गाँधी जी बाबा साहब को अस्पृश्यों का प्रतिनिधि मानने के लिए भी तैयार नहीं थे। गांधीजी का अनुयायी होकर ही उस काल में कोई कार्य कर सकता था, समकक्ष होकर नहीं। सुभाष चन्द्र बोस के साथ हुआ व्यवहार इसका उदाहरण है। गाँधी जी की राय थी कि अंग्रेजों की राजनीति हिन्दू समाज में विखराव कर राज करने की है। यह सत्य भी था, हिन्दू व मुसलमानों के बीच झगड़े खड़े कर, मुसलमानों का पक्ष लेकर अंग्रेजों ने भारत विभाजन के बीज बोये थे। पर यह मानना ठीक नहीं है कि हिन्दू समाज का बिखराव करना बाबा साहब का उद्देश्य था। उनका संघर्ष वर्ग को न्यायपूर्ण अधिकार दिलाने के लिए था। डॉ. मुंजे का भी इस पर गाँधीजी से भिन्न विचार था–''जातीय निर्णय के कारण अस्पृश्य हिन्दुओं से कदापि अलग नहीं होंगे।''

दोनों गोलमेज सम्मेलनों के परिणाम स्वरूप 17 अगस्त 1932 को प्रधानमंत्री रैमसे मैक्डोनाल्ड ने जातीय निर्वाचन क्षेत्रों में मताधिकार के अन्तर्गत भारत के 1463 निर्वाचन क्षेत्रों में से 71 स्थान उन्हें दिये। हिन्दू समाज के सैंकड़ों वर्षों के इतिहास में यह पहली बार हुआ। राजनीतिक सत्ता में तथाकथित अस्पृश्य समाज की भागीदारी क्रांतिकारी घटना थी।

गाँधी जी इस समय येरवदा जेल में थे। उन्होंने इस घोषणा को रद्द करवाने के लिए 20 सितम्बर 1932 से आमरण अनशन की घोषणा कर दी। देश भर से बाबा साहब पर दबाव आने लगे अंततः गांधीजी के प्राण बचाने के लिए स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्रों की मांग को छोड़कर सुरक्षित स्थान स्वीकार कर लिये। इसे पुणे समझौता कहते हैं। इसके अन्तर्गत 71 के स्थान पर 148 सुरक्षित स्थान रखे गये।

धनंजय कीर ने इस प्रकरण का सारांश दिया है–''अम्बेडकर से समझौता करने के लिए वे राजी नहीं थे। लेकिन मुसलमानों के सम्बन्ध में पृथक निर्वाचन क्षेत्र और स्वतंत्र प्रांतों के ऊँट का मुंह उन्होंने घटनाओं के तम्बू में घुसैड़ दिया। अम्बेडकर के बल और शस्त्र का उपयोग मुसलमानों की साम्प्रदायिक मांगों को परास्त करने के लिए किया जा सकता था। गांधीजी के भाषण से एक और बात बाहर आई और वह यह कि 'अस्पृश्य यदि मुसलमान या ईसाई हो गए तो उनकी उन्हें कोई परवाह नहीं है। गांधीजी ने ऐसे मतान्तरण के विरूद्ध एक भी शब्द नहीं निकाला।''

बाबा साहब 'अस्पृश्य हिन्दू समाज से अलग है यह कहकर उनकी सुरक्षा के लिए कुछ संवैधानिक व्यवस्था की मांग कर रहे थे, पृथक् 'दलित स्थान' नहीं मांग रहे थे, जैसा मुस्लिम लीग 'पाकिस्तान' माँग रही थी, फिर भी गाँधी जी मुस्लिम लीग की मांगों का समर्थन कर रहे थे और दलितों की मांगों का विरोध। इस गोलमेज परिषद में बाबा साहब का एक और उज्ज्वल पक्ष उजागर हुआ। अन्तर्गत अपने अधिकारों के लिए लड़ेंगे किन्तु बाहर वालों से बचायेंगे, इसी टेक का यह उदाहरण है। गोलमेज सम्मेलन में स्पृश्य हिन्दुओं के विरोध में दिये गए अपने भाषण का उपयोग मुसलमानों के नेता अपने जातीय स्वार्थ के लिए कर लेते हैं और तथाकथित उच्च वर्ण हिन्दुओं के प्रतिनिधि हिन्दुओं की सत्य बात उचित ढंग से करते नहीं हैं, यह देखकर मुसलमानों के संदर्भ में हिन्दुओं का पक्ष न्यायपूर्ण सिद्ध करने के लिए अनेक प्रकार की जानकारी देने वाला प्रतिवेदन अम्बेडकर जी ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री मेक्डोनॉल्ड को गुप्त रूप से दिया। इस बात का मर्म समझना चाहिए। वकील बुद्धि से वे दलित समाज का पक्ष रखते हुए भी हिन्दू समाज को हानि न हो, इसका सतत् स्मरण रखते हुए उसके पक्ष में भी तर्क सुझा रहे हैं, इससे उनके मन में यह भाव कितना गहरा था, कि हिन्दू समाज को हानि न हो, पता चलता है।

तीसरा रास्ताः संवैधानिक मार्ग

15 जुलाई 1947 को बाबा साहब ने कहा– "अभिजात धूर्त अंग्रेजों ने अस्पृश्य समाज को ठग लिया है। हिन्दू और मुसलमान सत्ता के वारिस हो गए हैं– .... इस राजसत्ता में हमारा हिस्सा क्या है? यही हमारा हिन्दुओं से सीधा सवाल है। हमें राजनैतिक संरक्षण चाहिए।"

यहाँ दो बातें ध्यान देने लायक हैं–बाबा साहब पैतृक अधिकार मुसलमानों से नहीं मांगते, हिन्दुओं से मांगते हैं। दूसरा पृथक् अधिकार नहीं मांगते राजनीतिक सुरक्षा की मांग करते हैं। अब बाबा साहब संविधान के माध्यम से हिन्दू समाज की ऐतिहासिक भूलों का परिष्कार कर तथाकथित अस्पृश्य समाज के लिए समता युक्त सामाजिक एकता की व्यवस्था करना चाहते हैं।

9 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक में बाबा साहब ने कहा–"इस देश का सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उत्थान आज नही तो कल होगा ही, इस बारे में मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। आज सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से हम एक दूसरे से अलग हो गए हैं, यह मैं जानता हूँ। अभी हम एक दूसरे से लड़ रहे हैं। लड़ने वाली एक छावनी का मैं भी एक नेता हूँ। ऐसा हुआ तो भी उचित समय और उचित परिस्थिति आते ही यह विशाल देश एक हुए बिना कभी नहीं रहेगा। दुनिया की कोई भी ताकत उसकी एकता में आड़े नहीं आ सकती। इस देश में इतने पंथ और इतनी जातियाँ होने के बावजूद किसी न किसी तरह हम सारे लोग इकट्ठा होंगे ही, इस बारे में मेरे मन में जरा भी संशय नहीं है।"

बाबा साहब के जीवनी लेखक धनंजय कीर इस भाषाण के बारे में अपना मन्तव्य देते हैं–

"अम्बेडकर का यह भाषण आस्था से इतना ओत–प्रोत था कि संविधान सभा पर उसका बड़ा उत्कट परिणाम हुआ। .....वक्ता के जीवन को मोड़ देने वाले और सभा को जीत लेने वाले ऐसे भाषण विगत काल में शायद ही हुए होंगे।"

इस भाषण का भाष्य करें तो ध्यान में आता है कि 'केवल अस्पृश्य वर्ग के हित,

अन्य विषयों से मेरा कोई लेना–देना नहीं, चिड़िया की आँख पर अर्जुन के निशाने जैसी एकमेव विषय लक्ष्य' ऐसी भूमिका न रहकर–'राष्ट्रहित की व्यापक परिधि में दलितों को सम्मान पूर्ण स्थान' इस भूमिका पर बाबा साहब अब स्थिर हो गए थे। इस भूमिका पर आना ही पड़ता है, इसका अच्छा उदाहरण बसपा है। उत्तरप्रदेश में तथाकथित दलित राजनीति 'तिलक तराजू और तलवार–इनको मारो जूते चार' जैसे नारो से प्रारम्भ हुई और उसे अंततः Social Engineering तक की यात्रा पर सहज ही आना पड़ा। संविधान सभा के बारे में धनंजय कीर लिखते हैं–''यह घटना भारत के इतिहास का एक चमत्कार ही है। भारत में अनेक युगों के अपने अस्पृश्यता के पाप का प्रक्षालन करने के लिए अपना नया मनु, नया स्मृतिकार शताब्दियों से मानवीयता से वंचित कर सत्वहीन किए हुए समाज में से चुना। विधि का यह विधान अतर्क्य ही है। जिसने बीस वर्ष पूर्व मनुस्मृति की होली जलायी थी, उसी विद्रोही से अपनी नई स्मृति की रचना का आह्वान करना, यह सवर्ण हिन्दुओं से नियति द्वारा लिया गया प्रतिशोध ही है, ऐसा कहने की इच्छा होती है। शायद यह भी हो सकता है कि कालचक्र का फेरा पूरा होना था।'' महर्षि वाल्मीकि ने राम के चरित्र से आचरणीय धर्म व मर्यादा के आदर्श की स्मृति ''रामायण'' के माध्यम से दी थी, वहाँ से प्रारम्भ होकर स्वतंत्र भारत के संविधान के रचनाकार बाबा साहब पर चक्र पूरा हुआ।

संविधान निर्माण से पूर्व के पर्व में बाबा साहब को तथाकथित सवर्ण बहुसंख्या का भय था। उन्होंने हम हिन्दू समाज के अंग नहीं तथा हमें पृथक राजनीतिक इकाई मानें, हमारी बस्तियाँ अलग बसाने का अधिकार मिले– ये मांगे की थीं। संविधान की रचना का सत्र प्रारम्भ होने पर इस भूमि का नामोनिशान भी नहीं था।

जनतंत्र के लिए आवश्यक बातों की चर्चा करते समय बाबा साहब ने कहा–''पहली शर्त है, समाज में प्रकर्ष से व्याप्त ऊँच–नीच का भाव न हो, समाज में कोई शोषित या दलित वर्ग न हो, यह स्थिति भी न हो कि एक वर्ग सारी सुख–सुविधाओं का लाभ उठाये और एक वर्ग केवल कष्ट उठाता रहे।''

बाबा साहब की दृष्टि से सामाजिक व आर्थिक व्यवहार में समान अवसर, भ्रातृ भाव पर आधारित समाज व्यवस्था, न्याय मिलने का विश्वास व सार्वजनिक सदसद् विवेक बुद्धि, सामाजिक व आर्थिक जनतंत्र के विकास की पूर्व शर्तें हैं। अन्त्योदय कर सबमें समता स्थापित करने के प्रयास के अन्तर्गत सामाजिक दृष्टि से पिछड़े, पद–दलितों को स्वयं की उन्नति के लिए सक्षम बनाने के निमित्त आरक्षण का तत्व अपने संविधान में समाविष्ट किया, किन्तु प्राप्त सुविधा को बनाये रखने का निहित स्वार्थ इसे चिर स्थायी न बना ले अतः इसकी पूर्ति की एक समय सीमा भी उन्होंने निर्धारित की थी। बाबा साहब ने आरक्षण की व्यवस्था के साथ ही यह संकेत दिया

था कि यह समाज की विषम स्पर्धा में कमजोर समाज घटकों को योग्य हिस्सा मिले, यही इस व्यवस्था का उद्देश्य है। अपना हिस्सा मिलने के बाद पंक्ति में पीछे खड़े का क्रम आना चाहिए। यदि धापे हुए अग्र पंक्ति में अड़े रहेंगे तो असंतोष पैदा होने की सम्भावना रहती है और शेष लोग, समुदाय, जातियाँ भी इसी पंक्ति में खड़े होने का प्रयत्न करती हैं। अतः बाबा साहब कहते हैं–

''अधिकार की रक्षा कानून से नहीं होती, वह तो सामाजिक व नैतिक सदसद् विवेक से संरक्षित होती है।''

ये सब व्यवस्थाएँ सामाजिक समता, बंधुता व समरसता स्थापित करने के लिए हैं। यह कैसे आयेगी? 25 दिसम्बर 1947 को दिल्ली में दिये एक भाषण में बाबा साहब कहते हैं–''हम आचरण में बंधुभाव नहीं रखते यह अपनी कमी है। हम भारतीय आपस में सगे भाई हैं। सामाजिक जीवन में एकता का अमृत–सिंचन कोई तत्व करता है तो वह बंधु भाव ही है। समरसता–समता–शोषण रहितता की प्रस्थापना के मार्ग की समस्याओं का वास्तविक निराकरण करना हो तो दोनों पक्षों को कुछ अप्रिय स्वीकार करना होगा। इस नए परिवर्तन के कारण जिनके हाथ के अधिकार कम होंगे, ऐसे निहित स्वार्थी, शोषण के कारण आवेश वश अतिरेकी बने लोगों के उद्वेग को सहन करते हुए संवैधानिक मार्ग तथा संतुलित पद्धति से शोषितों का नेतृत्व करने की आवश्यकता है। उनमें यह भाव निर्माण करना होगा कि हम सब एक समाज के हैं, एक ही परिवार के हैं।''

हम एक ही परिवार के हैं अतः अपना परिजन कहीं भी संकट में है या संकट में पड़ सकता है तो तुरंत उसकी सहायता का प्रयत्न करना चाहिए। स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि ''तुम तब ही और केवल तब ही सच्चे हिन्दू कहलाने के अधिकारी हो जब इस नाम को धारण करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कष्ट तुम्हें इस प्रकार विचलित कर दे जैसे तुम्हारा पुत्र संकट में हो।'' बाबा साहब तो दलित समाज से एकात्म हो गये थे अतः भावी को देखने की क्षमता भी आ गयी थी। इसी का परिणाम बाबा साहब का यह आह्वान था–

''मैं पाकिस्तान में फंसे हुए दलित समाज से कहना चाहता हूँ कि उन्हें जो मिले उस मार्ग व साधन से हिन्दुस्थान आ जाना चाहिए। दूसरी एक बात और कहना है कि पाकिस्तान अथवा हैदराबाद की निजामी रियासत के मुसलमानों अथवा मुस्लिम लीग पर विश्वास रखने से दलित समाज का नाश होगा। दलित समाज में एक बुरी बात यह घर कर गई है कि वह यह मानने लगा है कि हिन्दू समाज अपना तिरस्कार करता है, इस कारण मुसलमान अपना मित्र है। जिन्हें जोर–जबरदस्ती से पाकिस्तानी अथवा हैदराबाद (निजाम कालीन) में इस्लाम मजहब की दीक्षा दी गई है, उन्हें मैं यह आश्वासन देता हूँ कि मतांरतण करने से

पूर्व उन्हें जो व्यवहार मिलता था, उसी प्रकार की बंधुत्व की भावना का व्यवहार अपने धर्म में वापस लौटने पर मिलेगा। हिन्दुओं ने उन्हें कितना भी कष्ट दिया, तब भी अपना मन कलुषित नहीं करना चाहिए।''

विभाजन के समय दलित समाज के बंधुओं को बलपूर्वक पाकिस्तान में रोका गया था ताकि उनके खेतों व अन्यत्र काम करने वाले लोग मिल सकें। किन्तु विभाजन के समय से अब तक आई हिन्दू जनसंख्या में कमी, उन पर होने वाले अमानवीय अत्याचार जबरन मतांतरण तथा पीड़ित लोगों की भारत में शरण लेने का आकांक्षा ने बाबा साहब के कथन को सत्य सिद्ध कर दिया है।

सामाजिक न्याय और संविधानः-

बाबा साहब द्वारा स्थापित 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' ने संविधान सभा को देने के लिए 'राज्य और अल्पसंख्यक' शीर्षक से एक स्वतंत्र ज्ञापन तैयार किया था। सामाजिक न्याय की बाबा साहब की परिकल्पना का यह दस्तावेज है।

1. **संवैधानिक सुरक्षा**–इस ज्ञापन में दलितों के लिए अल्पसंख्यक शब्द का प्रयोग है आज अल्पसंख्यक वर्ग का अलग अर्थ है। कांग्रेस शासन में हिन्दू को छोड़कर अन्य सभी मजहबी घटकों को अल्पसंख्यक बना दिया है। बाबा साहब ने अल्पसंख्यक शब्द प्रयोग मजहबी दृष्टि से नहीं बल्कि सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से किया है, और यही वास्तविक अर्थ होना चाहिए। इस ज्ञापन में बाबा साहब ने अनुसूचित जातियों को राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक सुरक्षा की मांग की थी। संविधान राज्य के लिए बाध्यकारी होता है अतः बाबा साहब ने संवैधानिक सुरक्षा का अत्याधिक आग्रह किया। इस ज्ञापन में बाबा साहब ने तीन मांगे रखीः–
   i) मौलिक अधिकारों का लाभ
   ii) अल्पसंख्यक सुरक्षा के लाभ
   iii) विशेष सुरक्षा के प्रावधान
2. **समानता का अधिकार**– ज्ञापन में नागरिकों के मौलिक अधिकार शीर्षक में बाबा साहब अनुसूचित जातियों के संदर्भ में कहते हैं–''कानून के समक्ष समानता, सार्वजनिक स्थलों का सबको समान उपयोग करने का अधिकार, पंथ–जाति, उपासना पद्धति आदि को बाधा न बनाते हुए व्यवसाय करने और सरकारी पद पाने का अधिकार इन धाराओं में सम्मिलित है। अनुसूचित जातियों के लोगों को उनकी जातियों के कारण बहिष्कृत किया जाता है। संविधान का कानून ही ऐसा हो कि इस प्रकार से बहिष्कृत करने पर पाबंदी हो तथा ऐसा यदि कोई करता है तो उसे दण्डित किया जाए।''

3. **सत्ता में भागीदारी**-ज्ञापन में बाबा साहब ने मांग की कि "केन्द्र व राज्यों के विधान मण्डलों में अनुसूचित जातियों को जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। उसे देते समय (अनुसूचित जातियों) की आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति और शैक्षणिक प्रगति पर ध्यान देना चाहिए। बाबा साहब का यह केन्द्रीय विचार था कि सत्ता में भागीदारी के बिना अनुसूचित जातियों का विकास सम्भव नहीं है। उन्हें बहुसंख्यकों की दया पर नहीं छोड़ा जा सकता।

4. **शैक्षणिक संरक्षण** - अनुसूचित जातियों का शैक्षणिक पिछड़ापन दूर करने के लिए बजट (अर्थ-संकल्प) में आर्थिक प्रावधान किया जाना चाहिए। यह प्रावधान उनकी जनसंख्या के अनुपात में होना चाहिए।

5. **राज्य समाजवाद**-ज्ञापन के स्पष्टीकरण निवेदन में बाबा साहब लिखते हैं-"जनता के आर्थिक जीवन का नियोजन करने की जिम्मेदारी राज्य की है। उच्चतम उत्पादन होना चाहिए, निजी उद्योग-व्यवसायों का भी विकास होना चाहिए, और उसी तरह सम्पत्ति का समान वितरण भी होना चाहिए। राज्य शासन यह कार्य राज्य समाजवाद (State Socialism) का पालन कर पूर्ण कर सकता है।" बाबा साहब का आग्रह था कि राज्य समाजवाद को संविधान का भाग बनाना चाहिए ताकि किसी भी दल की सत्ता आए इस पर अमल करना अनिवार्य हो। जिस प्रकार बाबा साहब ने 'राज्य समाजवाद' की चर्चा की है उसी तरह उनका दूसरा शब्द हैं सामाजिक अर्थशास्त्र (Social Economy) बाबा साहब की समाजवाद की संकल्पना 'योजना बद्ध आर्थिक विकास' की संकल्पना है। यूरोप के पूंजीवाद तथा रूस के तानाशाही पूर्ण एकाधिकार के कम्यूनिस्ट विचार से वे सहमत नहीं थे।

संविधान के शिल्पकार:-

बाबा साहब संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। किन्तु बाबा साहब का प्रारम्भ में संविधान सभा में जाने का उद्देश्य भिन्न था। उन्हीं के शब्दों में-"संविधान सभा में जाने का मेरा उद्देश्य अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा का था, लेकिन मुझे प्रारूप समिति में लिया गया और बाद में प्रारूप समिति का अध्यक्ष पद भी सौंपा गया इसका मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।"

13 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा में पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution) प्रस्तुत किया। बाबा साहब ने इस पर चर्चा में कहा कि, इस प्रस्ताव में आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक न्याय देने

की जिम्मेदारी राज्य पर क्यों नहीं डाली गई? बाबा साहब की यह राय होने के उपरान्त भी उद्देश्य पत्रिका (Preamble) बन गई। बाबा साहब इसमें पं. नेहरू के प्रस्ताव का आशय लाये। इसमें समाजवाद व सेकुलर शब्द नहीं थे तथा बाबा साहब ने इसमें 'बंधुत्व भाव' के तत्व का समावेश किया जो नेहरू जी के मूल प्रस्ताव में नहीं था।

सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय की दृष्टि से संविधान में मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का समावेश किया गया। कानून के समक्ष सभी नागरिकों को समानता का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार आदि का समावेश किया गया।

संविधान के प्रारूप का सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद–11, अस्पृश्यता को कानूनन समाप्त करने वाला अनुच्छेद था। इसके संबंध में संविधान सभा के कुछ सदस्यों के उद्‌गार दृष्टव्य हैं।

डॉ. मनमोहन दास ने कहा–''मुझे ऐसा लगता है कि, आज का 29 नवम्बर, 1948 यह दिन हमारे लिए यादगार दिन होगा। इतिहास में यह दिन मुक्ति के दिन के रूप में अंकित किया जाएगा। ....अंत में हमारे प्रज्ञावान विधि मंत्री और प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. बाबा साहब अम्बेड़कर के प्रति चार शब्द बोले बिना मैं रह नहीं सकता। कैसी विडम्बना है देखिए। जिस व्यक्ति को एक विद्यालय से निकालकर दूसरे विद्यालय में भेजा गया, जिस व्यक्ति को अपने पाठ विद्यालय के बाहर–पढ़ने पड़े, उसी व्यक्ति के कंधे पर भारत का राज्य संविधान बनाने का महान् कार्य सौंपा गया और उन्होंने अस्पृश्यता की रूढि पर प्राणांतिक हमला किया है।''

एम.एन.राव की टिप्पणी थी ''29 नवम्बर 1948 को अस्पृश्यता समाप्त करने का अनुच्छेद संविधान सभा ने स्वीकार किया। इस प्रसंग का बारीकी से अध्ययन करने से पता चलेगा कि इसके पार्श्व की प्रेरक शक्ति निस्संदेह रूप से डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ही थे। जब उन्होंने विभक्त निर्वाचन क्षेत्र की मांग का त्याग किया और बहिष्कृत वर्ग को अल्पसंख्यक का दर्जा देने की मांग भी छोड़ दी तब अस्पृश्यता खत्म करने का दूसरा मार्ग वही था कि जो अस्पृश्य वर्ग में नहीं आते वे ही अस्पृश्यता की घृणित रूढि का स्वयं निषेध करें। इसीलिए अनुच्छेद 17 अनिवार्य हो गया। संवैधानिक आज्ञा के रूप में देश ने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि, अस्पृश्यता की रूढ़ि हम तोड़ रहे हैं। अस्पृश्यता की रूढ़ि जैसी मानवी इतिहास में समानान्तर और कोई बात नहीं है। अमेरिका के नीग्रो की गुलामी से अस्पृश्यता की रूढि की तुलना नहीं हो सकती। डॉ. बाबा साहब जब विभक्त निर्वाचन क्षेत्र की मांग कर रहे थे तब उन्होंने अस्पृश्यता कानूनन खत्म की जाए, यह माँग कभी नहीं की। परन्तु प्रारूप समिति के उनके अध्यक्ष बनने पर और

संविधान के भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों को अंतिम रूप देने का काम उनके पास होने पर अनुच्छेद 17 अनिवार्य बन गया।"

इस अनुच्छेद की यह विशेषता है कि अस्पृश्यता पालन करना संज्ञेय अपराध बन गया। इसको सरदार वल्लभ भाई पटेल ने संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया यह भी महत्व पूर्ण है।

हिन्दू कोड बिल

अब तक की चर्चा के आधार पर हम कह सकते हैं कि बाबा साहब द्वारा प्रवर्तित की गई क्रांति केवल दलित-क्रांति थी, ऐसा कहना उनकी महानता एवं व्यापक ध्येय दृष्टि को केवल दलितों के घेरे में बंद कर देने जैसा होगा। उनकी व्यापक दृष्टि 'हिन्दू कोड बिल' पारित करवाने के सम्बन्ध में प्रयत्न से ध्यान में आती है। बाबा साहब ने नेहरू जी को पत्र में लिखा- "आपको पता है कि हिन्दू कोड बिल के बारे में मेरी भावनाएँ बड़ी तीव्र हैं। अपने गिरते स्वास्थ्य की भी मैं परवाह नहीं करता क्योंकि विधेयक स्वीकृत होना अधिक महत्वपूर्ण है।"

1952 के आम चुनाव होने थे। जन विरोध की आशंका से नेहरू जी ने विधेयक रोक दिया। विधेयक संसद में न रखने के मुद्दे पर ही बाबा साहब ने मंत्री मण्डल से त्यागपत्र दे दिया था। उनकी इतनी तीव्र भावना क्यों थी? बाबा साहब को लगता था कि इसके कारण हिन्दू सामाजिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन होंगे तथा स्वतंत्रता व समता के तत्व सामाजिक स्तर पर लागू होंगे।

बाबा साहब द्वारा प्रस्तावित, बाद में संशोधित रूप में स्वीकृत हिन्दू कोड बिल भारत में 'समान नागरिक संहिता' की पूर्व पीठिका था। इसी विधेयक के माध्यम से कानूनन हिन्दू की परिभाषा में सिखों, जैनों, बौद्धों को भी शामिल किया गया। इस विधेयक के पाँच भाग थे-विवाह , तलाक, उत्तराधिकार, निर्वाह और दत्तक सम्बन्धी कानून।

बाबा साहब ने हिन्दू कोड़ बिल में मनुस्मृति का भी आधार लिया। वे कहते हैं-

"यदि मेरे सनातनी मित्रों ने उनके मनु को ध्यान पूर्वक पढा तो उन्हें ध्यान में आएगा कि विधेयक का यह भाग (पैतृक सम्पत्ति सम्बन्धी) परिपूर्ण कोड है और उसे मनु के कोड की मान्यता है।"

राष्ट्र पुरूष बाबा साहब

देश के अनेक शाश्वत व ज्वलंत विषयों पर बाबा साहब ने अपने तर्कपूर्ण विचार रखे हैं जो उनकी राष्ट्र दृष्टि के द्योतक हैं। कुछ विषयों पर उनके विचार प्रस्तुत हैं–

(क) संस्कृत भाषा –संस्कृत भाषा के सम्बन्ध में बाबा साहब के मन में अत्यंत आदर था। अस्पृश्यता के विकट वातावरण ने उन्हें विद्यालय में संस्कृत के शिक्षण से वंचित किया, इसका अत्यंत वेदना से उन्होंने बाद में उल्लेख भी किया था।

संविधान समिति में राष्ट्र भाषा व राज्य व्यवहार की अधिकृत भाषा से सम्बन्धित अनुच्छेद में संस्कृत को पर्यायी भाषा रखने के बारे में जिन लोगों ने संशोधन सुझाये उनमें बाबा साहब भी थे। जब इस विषय में संवाददाताओं ने अम्बेडकर जी से पूछा तब उन्होंने कहा–''संस्कृत में दोष ही क्या है? प्रो. नजीरूद्दीन अहमद ने डब्ल्यू. सी. टेलर, मैक्समूलर, विलियम जोंस जैसे अनेक पश्चिमी विद्वानों के उद्धरण देकर–संस्कृत भाषा की अतुलनीय समृद्धि व शुद्धता के बारे में ग्रीक व लैटिन भाषा से कितनी स्पृहणीय व संसार की श्रेष्ठ भाषा है, इसके प्रमाण दिये। संस्कृत के पक्ष में प्रो. शाहिदुल्ला ने तो यहाँ तक कहा कि 'व्यक्ति किसी भी वंश का हो, संस्कृत प्रत्येक की भाषा है।''

मगर दुर्भाग्य से बाबा साहब द्वारा संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने का प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ और इसे केवल आठवीं अनुसूचि में स्थान दिया गया। एक आनंद का प्रसंग भी इससे जुड़ा है जिससे स्पष्ट होता है कि बाबा साहब संस्कृत के विद्वान थे। जब केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रभाषा पर विभिन्न समूहों में चर्चा चल रही थी, तब बाबा साहब और लक्ष्मीकांत मैत्र परस्पर संस्कृत में ही वार्तालाप कर रहे थे।

10 सितम्बर, 1949 को शेड्यूल्ड कास्ट फैडरेशन में भी बाबा साहब ने

संस्कृत के समर्थन में प्रस्ताव पारित करवाने का प्रयत्न किया, किन्तु बी.पी. मौर्य जैसे कुछ तरूणों के विरोध के कारण यह सम्भव नहीं हो पाया। बाद में संस्कृत भारती के च.मू.कृष्ण शास्त्री से चर्चा करते समय बी.पी.मौर्य ने इस सम्बन्ध में खेद प्रकट करते हुए कहा कि उन्होंने उस समय बाबा साहब के संस्कृत भाषा पर प्रस्ताव का अकारण ही विरोध किया था।

(ख) ब्राह्मण वर्ग–बाबा साहब पुरोहितवाद या ब्राह्मणवाद के आलोचक थे, ब्राह्मण विरोधी नहीं। बाबा साहब का उपनाम 'अम्बेडकर' उनके ब्राह्मण शिक्षक ने दिया था तथा उन्हें साथ बैठाकर भोजन करवाते थे इसका बाद में स्वयं बाबा साहब ने उल्लेख किया है।

वर्षा में भीगे अम्बेडकर जी को अपने घर में गरम पानी से स्नान करवाने के लिए अपने पुत्र के साथ भेजने वाले पेडसे नामक अध्यापक भी ब्राह्मण थे। एल्फिंस्टन हाई स्कूल में जिस गणित के शिक्षक ने छात्रों से कहा था कि अम्बेडकर जी श्याम पट्ट पर लिखेंगे, जिसे अपने भोजन पात्र हटाने हैं, हटा ले। वे अध्यापक ब्राह्मण ही थे। भगवान बुद्ध से सम्बन्धित अपनी पुस्तक भेंट देने वाले, छात्रवृत्ति के लिए बड़ौदा महाराजा से सम्पर्क करवाने वाले तथा अनुबंध की शर्तो के उल्लंघन के उपरान्त भी धन वापसी न हो इसकी व्यवस्था करने वाले कृष्णा जी अर्जुन केलुस्कर ब्राह्मण थे।

महाड़ सत्याग्रह के पश्चात् तालाब के शुद्धिकरण का विरोध कर तथाकथित शुद्धि से पूर्व ही तालाब में स्नान कर चुनौति देने वाले बापूराव जोशी भी ब्राह्मण थे।

महाड़ आन्दोलन के समय ब्राह्मणेतर समाजों की ओर से दो नेता बाबा साहब से मिलने आये और उनको सत्याग्रह में इस आधार पर समर्थन देने की शर्त रखी कि वे इस आंदोलन से ब्राह्मणों को दूर रखें। बाबा साहब ने दो टूक शब्दों में इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और घोषणा की कि यह दृष्टिकोण प्रमादपूर्ण है कि सारे ब्राह्मण अस्पृश्यों के शत्रु हैं। उन्होंने कहा कि ब्राह्मणवादी वृत्ति से मुक्त ब्राह्मणों का हम स्वागत करते हैं। महत्व जन्म का नहीं गुणवत्ता का है।

हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत करते समय बाबा साहब लगभग अकेले पड़ गए थे। राष्ट्रपति भी प्राण प्रण से इसका विरोध कर रहे थे। उस समय इस विधेयक के पक्ष में लोकसभा में जोरदार भाषण देने वाले हृदयनाथ कुँजरू तथा न. वि. गाडगिल दोनों ब्राह्मण थे।

नियम है कि उच्च न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश को लम्बित विधेयक

पर टिप्पणी नहीं करना चाहिए। इस नियम की अवहेलना कर न्यायमूर्ति गजेन्द्र गड़कर (मुम्बई उच्च न्यायालय) ने हिन्दू कोड बिल के समर्थन में भाषण दिया। गजेन्द्र गडकर जी महाविद्यालय में अम्बेडकर जी के सहपाठी थे। लोकमान्य तिलक के पुत्र श्रीधर पंत तिलक ने बाबा साहब के नेतृत्व में समता संघ की स्थापना की थी। ब्राह्मणेतर व दलित समाज के सभी बंधुओं ने लोकमान्य तिलक के दीवान खाने में एक साथ बैठकर चाय, पान किया। इसका उद्देश्य हिन्दू समाज से चातुर्वर्ण्य जनित विषमता मिटाना था। इनके आत्मघात के बाद श्रद्धांजलि लेख में बाबा साहब ने लिखा–"उनका निश्चय, उत्साह व कर्त्तव्य अवर्णनीय था। वे जीवित रहते तो महाराष्ट्र के अस्पृश्यता निवारण के कार्य को पूरा कर देते।" ये श्रीधर पंत भी ब्राह्मण ही थे।

महान् लोग जाति आदि संकुचित बातों से ऊपर उठकर समग्रता से विचार करने वाले, समाज का सत्य मार्गदर्शन करने वाले जन नेता होते हैं, उन्हें दलित नेता, ब्राह्मण विरोधी सिद्ध करना एक राष्ट्र पुरुष का कद छोटा करने का ही प्रयत्न है।

(ग) **भाषावार प्रान्त रचना:**–बाबा साहब ने एक भाषण में इस विषय पर अपने विचार विस्तार से रखे थे। उनकी दृष्टि में भाषायी राज्य व्यावहारिक होना चाहिए तथा जनसांख्यिकी अध्ययन (डेमोग्राफिक सर्वे) व उस बनाये जाने वाले राज्य विशेष पर प्रभाव का अध्ययन करना चाहिए। भाषिक राज्य बनाने पर किसी जाति का बहुल्य न हो, बाबा साहब व्यंग्य से कहते हैं कि यह गांधी जी के स्वराज्य का अंत होगा और ऐसे राज्य को भाषिक राज्य के स्थान पर "यदि हम जाट राज्य, रेड्डी राज्य अथवा मराठा राज्य कहें तो जल्दी समझ में आएगा।" तीसरा प्रश्न बाबा साहब उठाते है कि एक भाषा बोलने वाले सभी को एक राज्य में एकत्रित करना सम्भव है क्या?

(घ) **पत्रकारिता:**–बाबा साहब ने 'मूक नायक' (1920) 'बहिष्कृत भारत' (1927) 'जनता' (1930) व जनता का ही रूपान्तरित 'प्रबुद्धभारत' (1956) नामक चार समाचार पत्र चलाये। उन्होंने समाचार पत्रों में लेखन का कार्य अंग्रेजी समाचार पत्र 'बॉम्बे क्रानिकल' से किया। उनके आन्दोलन को वैचारिक आधार देने का कार्य 'मूकनायक' में लिखे 14 लेखों ने दिया था। आन्दोलन का मुख–पत्र होने का गौरव 'बहिष्कृत भारत' को मिला। पत्रकारिता के सम्बन्ध में बाबा साहब ने लिखा कि, "सारी जातियों का कल्याण हो सके, ऐसी सर्वसमावेशक भूमिका समाचार पत्रों को लेनी चाहिए यदि वे यह

भूमिका नहीं लेते हैं, तो सबका अहित होगा।''

(ड.) भारत का संविधानः–25 नवम्बर 1949 के दिन संविधान सभा में बाबा साहब का अंतिम, उद्‌बोधक भाषण हुआ। इसमें राष्ट्र के लिए प्रेरक तथा भविष्य के लिए दिशाबोधक कई विषयों का संकेत उन्होंने किया है–

1. **संविधान की सफलताः**–''मैं मानता हूँ कि कोई भी संविधान कितना भी अच्छा हुआ, तो भी उसे लागू करने के लिए जिन लोगों को नियुक्त किया जाता है, वे यदि बुरे हुए तो संविधान भी बुरा हो जाता है। इसके विपरीत कोई संविधान बुरा है, पर उसे लागू करने के लिए नियुक्त लोग अच्छे हुए, तो संविधान अच्छा साबित होगा। ......भारत के लोग और उनके राजनीतिक दल किस प्रकार का व्यवहार करेंगे, इसे कौन बता सकता है? वे अपना ध्येय प्राप्त करने के लिए संविधान का सहारा लेंगे अथवा उसके लिए क्रांतिकारी मार्ग पसन्द करेंगे। यह बताने के लिये किसी देवदूत की आवश्यकता नहीं है यदि उन्होंने क्रान्तिकारी मार्ग स्वीकार किया, तो संविधान कितना भी अच्छा हो, वह असफल होगा।''

2. **संविधान विरोधी कौन**–''संविधान का विरोध अधिकतर दो समूहों, साम्यवादियों व समाजवादियों की ओर से होता है। वे विरोध क्यों करते हैं? संविधान खराब होने के कारण करते हैं क्या? मैं कहता हूँ, नहीं!! साम्यवादी दल को अखिल श्रमिक वर्ग की तानाशाही के तत्व पर आधारित संविधान चाहिए। समाजवादियों को दो बातें चाहिए। पहली बात यह है कि यदि वे सत्ता में आते हैं, तो मुआवजा न देते हुए निजी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण या सामाजिकीकरण करने की स्वतंत्रता संविधान के तहत मिलनी चाहिए। दूसरी यह कि संविधान में उल्लिखित मूलभूत अधिकार निरंकुश व अमर्यादित होने चाहिए याने यदि उनका दल सत्ता पर नहीं आ पाता है, तो उन्हें केवल आलोचना करने की ही नहीं, राज्य सत्ता को उलटने की उच्छ्रंखल स्वतंत्रता मिलेगी।''

3. **संविधान की सीमा**–''मैं यह नहीं मानता कि संसदीय लोकतंत्र राजनीतिक लोकतंत्र की एकमेव आदर्श पद्धति है। ....मैं यह भी नहीं कहता कि मूलभूत अधिकार कभी निरंकुश नहीं होंगे...मैं इतना ही कह रहा हूँ कि संविधान में अनुस्यूत तत्व सद्यःकालीन पीढ़ी की राय हैं और यदि यह आपको अत्युक्ति लगती हो, तो इस संविधान समिति के सदस्यों

की राय है।" ये दोनों ही संकेत आज विकृत रूप में फलित हुए हैं। संसदीय लोकतंत्र सर्वदुर्गुण सम्पन्न और सर्वगुण विपन्न हुआ दिखाई देता है तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर भारतीय संस्कृति व परम्परा का प्रहसन या विदूषकीकरण में स्यूडों सेकुलरों को रस आने लगा है।

4. **संविधान अपरिवर्तनीय नहीं:**– "कनाड़ा की तरह जनता को संविधान में संशोधन करने का अधिकार अस्वीकार करके अथवा अमेरिका या आस्ट्रेलिया के समान संविधान संशोधन अवास्तविक प्रमाणों व शर्तों पर अवलम्बित रखकर संविधान को अंतिम व अचूक होने का सिक्का मानने का काम इस समिति ने नहीं किया। इतना ही नही तो संविधान संशोधन के लिए सबसे सुलभ प्रक्रिया व्यवस्था उसने की है।........संविधान से असंतुष्ट रहने वालों को उसमें संशोधन के लिए केवल दो–तिहाई बहुमत प्राप्त करना होगा।

5. **लोकतांत्रिक व्यवस्था को खतरा:**–"भारत जैसे देश में जहाँ लोकतंत्र दीर्घकाल से उपयोग में नहीं है, इस कारण ऐसा अनुभव किया जा रहा है, जैसे अपने देश में कुछ नया हो रहा है, वहाँ लोकतंत्र का स्थान तानाशाही द्वारा लेने की पूरी सम्भावना है। नये रूप में आया यह लोकतंत्र अपना बाह्य स्वरूप कायम रखेगा, पर वस्तुतः उसके द्वारा अपना स्थान तानाशाही को देने की सम्भावना है। यदि किसी एक दल को निर्वाचन में प्रचण्ड बहुमत मिलता है, तब दूसरी सम्भावना वास्तविकता में बदलने का बड़ा खतरा है।" इसका 1975 के आपात काल में भारत को प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। इसी के साथ बाबा साहब एक दूसरी बात भी कहते हैं कि विभूति पूजा से भी प्रजातंत्र को खतरा है और स्वाधीनता के बाद पं. नेहरू जी के आभा मण्डल तथा गाँधी जी की विरासत को एक परिवार द्वारा भुनाने के उदाहरण इसके प्रमाण हैं। बाबा साहब कहते हैं कि, "यह चेतावनी अन्य किसी देश की अपेक्षा भारत के सम्बन्ध में अधिक महत्व की है; क्योंकि भक्ति, जिसे विभूति पूजा भी कहा जाता है, उसका भारतीय राजनीति में जितना प्रभाव है, उतना अन्य किसी देश की राजनीति में नहीं है। ....राजनीतिक में भक्ति अथवा विभूति पूजा निश्चित ही अवनति और अंततः तानाशाही की ओर जाने वाला मार्ग होता है।"

6. **कानून पालन का स्वभाव:**–अंग्रेजों के शासन काल में कानून तोड़ना

देश भक्ति का प्रमाण माना जाता था किन्तु स्वाधीनता के बाद भी लोगों का यह स्वाभाव गया नहीं लगता है। बाबा साहब ने इसकी ओर संकेत किया है–''आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों को साध्य करने के लिए जब संवैधानिक मार्ग की कोई सम्भावना नहीं थी, तब असंवैधानिक मार्ग का समर्थन किया जा सकता था। अब जब संवैधानिक मार्ग खुल गया है, तब असंवैधानिक मार्ग का समर्थन नहीं किया जा सकता है। यह मार्ग दूसरा, तीसरा न होकर अराजकता का मार्ग है और इसका जितना जल्दी त्याग किया जाएगा, अपनी दृष्टि से उतना ही अच्छा होगा।''

7. **सामाजिक लोकतंत्र:**–''हम लोगों को राजनीतिक लोकतंत्र के साथ सामाजिक लोकतंत्र को भी प्रस्थापित करना चाहिए।.......सामाजिक लोकतंत्र का अर्थ है स्वतंत्रता, समता और बंधुता युक्त जीवन पद्धति। स्वतंत्रता, समता व बंधुता को त्रिमूर्ति के स्वतंत्र हिस्से मानने से काम नहीं होगा। वे मिलकर ऐसी त्रिमूर्ति साकार करते हैं कि इनमें से किसी एक ने दूसरे को छोड़ दिया, तो लोकतंत्र के प्रयोजन की पराजय होगी।''

(च) भगवाध्वज – 3 जुलाई 1947 को मुम्बई में अनन्त राव गद्रे, प्रबोधनकार ठाकरे आदि को बाबा साहब ने अभिवचन दिया कि ''यदि प्रभावी लोग इस विषय में जनमत तैयार करते हैं, तो ध्वज समिति के सामने मैं भगवा ध्वज का विषय प्रस्तुत कर सकता हूँ।''

10 जुलाई को मुम्बई के विमानतल पर हिन्दू महासभा के नेताओं ने बाबा साहब को भगवा ध्वज भेंट किया, तब भी उन्होंने यही वचन दिया। किन्तु यह प्रयास दूसरी बार असफल हुआ। भगवाध्वज को राष्ट्रीय ध्वज बनाने का पहला अवसर 1931 में आया था जब कराची अधिवेशन में पट्टाभि सीता रमैया के संयोजकत्व में सरदार वल्लभभाई पटेल, पं. जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, मास्टर तारा सिंह, बी.डी.केलकर व डॉ. हार्डीकर की एक ध्वज समिति का गठन किया गया था। इस समिति का निष्कर्ष था–''हम अनुभव करते हैं कि ध्वज विशिष्ट, कलात्मक, आयताकार और असाम्प्रदायिक होना चाहिए। सर्वसम्मत राय यही रही कि राष्ट्रीयध्वज एक ही रंग का होना चाहिए। यदि ध्वज एक ही रंग का रहता है, तो वह भारतीयों को अधिक स्वीकार होगा। समग्रतः यदि उसे अलग पहचान बनाये रखने वाला तथा इस प्राचीन देश की लम्बी परम्परा से जुड़ा होना है, तो वह रंग केसरिया या भगवा रंग ही है।''

भीमाय तस्मै नमः

21 मार्च 1926, कोल्हापुर रियासत के मानगाँव में आयोजित अस्पृश्यों की परिषद में छत्रपति शाहूजी महाराज ने अपने भाषण में जैसे युवा अम्बेडकर के भवितव्य की उद्‌घोषणा की थी–''आप लोगों को अम्बेडकर के रूप में उद्धारकर्त्ता मिल गया है। वह आपकी बेड़ियों को तोड़ कर रहेगा, इस बात पर मुझे भरोसा है। केवल इतना ही नहीं, भारत के महान् नेताओं की श्रेणी में इसका विशिष्ट स्थान रहेगा।'' बाबा साहब का पूरा जीवन इस भविष्यवाणी को सिद्ध करने वाले यात्रा–वृतांत जैसा ही है, किन्तु इस यात्रा में वे अकेले नहीं हैं। उन्होंने घोषणा की थी कि ''मैं अपनी अज्ञानी, अंधी जनता के हाथ की छडी हूँ।'' और वास्तव में उन्होंने पथ प्रदर्शक बनकर सदियों के अज्ञानांधकार से दलित समाज को मुक्त कर दिया, अस्पृश्यता के कलंक को धो दिया। किन्तु इसका उन्हें अहंकार नहीं है, श्रेय लेने की चाह नहीं है। वे कहते हैं, ''मेरी अपनी जनता के उद्धार के लिए मुझे अपना एक निमित्त और साधन बनाकर भगवान ने यह अवसर दिया है, मुझे अपना माध्यम बनाया है। यह मेरी दृढ़ अनुभूति है। इसलिए इन कार्यों से प्राप्त होने वाला समाधान इतना दुर्लभ है कि बहुत कम भाग्यवान ही उसके अधिकारी बन पाते हैं।'' उनकी देश भक्ति पर संदेह का कोई कारण नहीं है किन्तु गाँधी जी का आभा मण्डल ऐसा था कि उनके रूख को देखकर अनेक लोगों व समाचार पत्रों ने उन पर तीखी टिप्पणियाँ की थी। इतना होने पर भी गोलमेज सम्मेलन से लौटकर उन्होंने कहा– ''हिन्दू समाज की भावी पीढ़ी यही फैसला देगी कि मैंने अपने देश के लिए सही और नेक काम किया है।''

बाबा साहब ने प्रमुखता अछूतोद्धार के कार्य को दी, इस कारण कुछ लोगों को यह भ्रम हो सकता है कि बाबा साहब ने केवल इसी क्षेत्र में कार्य किया। वास्तव में वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे और प्रत्येक क्षेत्र में उनकी यशस्वी भूमिका रही। वे सही आर्थों में भारत माँ के सपूत थें, उनके कार्य की मूल प्रेरणा राष्ट्र हित थी। धर्म–संगर के समय दिये गये उद्‌बोधनों में वे बार–बार रेखांकित करते हैं कि सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए अछूतोद्धार राष्ट्र के हित में है, अतः राष्ट्रीय कार्य है। समता व समरसता बिना बंधुता के नहीं आ सकती और यही राष्ट्र का आधार है–''राष्ट्र निर्माण के लिए प्रथम आवश्कता है सम्पन्न विरासत की स्मृति का सामान्य स्वत्व और दूसरी है

वास्तविक सहमति, एक साथ विकास करने की उत्कट अभिलाषा, अविभाजित उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त निधि को सुरक्षित रखने की इच्छा।''

जब कोई व्यक्ति अपने मत, सम्प्रदाय, मजहब को राष्ट्र से ऊपर समझे तो यह विकृत सोच का परिणाम और शर्म की बात है। उनका मत था कि हमारी राष्ट्रीयता स्पष्ट और निर्विवाद होनी चाहिए। वे आगे लिखते हैं–''मुझे अच्छा नहीं लगता जब कुछ लोग कहते हैं कि हम पहले भारतीय हैं और बाद में हिन्दू अथवा मुसलमान हैं। मुझे यह स्वीकार नहीं। मैं चाहता हूँ कि लोग पहले भी भारतीय हों और अंत तक भारतीय रहें, भारतीय के अलावा कुछ भी नहीं।''

और इसीलिए संविधान सभा के अंतिम भाषण में पूर्व काल में राष्ट्र की स्वतंत्रता पर आये संकटों की कारण मीमांसा करते हुए स्वतंत्रता की रक्षा रक्त की अंतिम बूंद तक करने का आह्वान किया–

''26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र हो जाएगा। उसकी स्वतंत्रता का क्या होगा? वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करेगा कि उसे पुनः खो देगा? मेरे मन में पहला विचार इस सम्बन्ध में ही आता है। ऐसा नहीं है कि भारत कभी भी स्वतंत्र राष्ट्र नहीं रहा है। मुद्दा यह है कि पहले जो स्वतंत्रता थी, उसे उसने गँवाया। क्या वह उसे फिर से गवाँ देगा? भविष्य के विषय में चिंतित करने वाला विचार यही है। चिंता का कारण यह है कि उसने केवल अपनी स्वतंत्रता ही नहीं गँवायी थी, उसकी अपनी जनता में से कुछ की अप्रामाणिकता व विश्वासघात के कारण स्वतंत्रता गँवायी थी। मोहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया, तब दाहिर के सेनापति ने मोहम्मद बिन कासिम के दलाल से रिश्वत ली और अपने राजा की और से लड़ने से मना कर दिया। मोहम्मद गौरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रण देने व पृथ्वीराज से लड़ने के लिए सोलंकी राज्य व स्वयं अपनी सहायता देने वाला जयचंद था। जब शिवाजी हिन्दुओं की मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे, उस समय बाकी मराठा सरदार और राजपूत मुगल सम्राट की और से लड़ रहे थे।..... क्या इतिहास की पुनरावृत्ति होगी? यही विचार मुझे चिंता से व्यग्र करता है। व्यग्रता तीव्र करने वाला कारण यह है कि जाति व सम्प्रदाय के अपने पुराने शत्रुओं के साथ अब परस्पर विरोधी व विभिन्न राजनीतिक प्रणाली के अनेक राजनीतिक दलों का सामना करना पड़ेगा। भारत के लोग राष्ट्र को अपने राजनीतिक सम्प्रदाय से श्रेष्ठ मानेंगे अथवा अपने राजनीतिक सम्प्रदाय को श्रेष्ठ मानेंगे? कहना कठिन है। पर यदि दलों ने अपनी राजनीतिक प्रणाली को राष्ट्र से श्रेष्ठ माना, तो अपनी स्वतंत्रता फिर खतरे में पड़ सकती है।...... इस सम्भावना से दृढ़ता से अपनी रक्षा करनी होगी। अपने शरीर के रक्त की अंतिम बूँद तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी चाहिए।''

इस वक्तव्य से बाबा साहब की देश के प्रति निष्ठा ही नहीं उनकी वास्तविक

महानता भी प्रकट होती है। इस प्राचीन राष्ट्र की गरिमा तथा दीर्घकालीन सतत संघर्ष से प्राप्त स्वतंत्रता इस बार अक्षुण्ण रहे इसके लिए दो बातों की आवश्यकता बाबा साहब ने प्रकट की है– व्यक्तिगत चरित्र व राष्ट्रीय चरित्र–दोनों में से एक नहीं, सिक्के के दोनों पहलुओं की तरह दोनों चाहिए। ऐसे राष्ट्र पुरूष को केवल 'दलित–नेता' या 'दलितों के नेता' के सीमित दायरे में समेटना उनके विराट व्यक्तित्व को संकुचित करना है। बाबा साहब जन–जन की आस्था और प्रेरणा के केन्द्र बनें इसकी आवश्यकता है। उन्होंने तत्कालीन परिवेश में जो कहा और किया उसका उसी संदर्भ में आकलन करना चाहिए, विशेष कर अस्पृश्यता निवारण के सम्बन्ध में। यथा आज मनुस्मृति को मानना तो दूर अधिसंख्य ने देखा भी नहीं, फिर भी उसके प्रक्षिप्त उद्धरणों को वर्तमान में सामाजिक वैमनस्य के लिए उदधृत करना अप्रासंगिक है। आज हमारी नवीन स्मृति भारत का संविधान है। आज तथाकथित ब्राह्मणवाद या पुरोहित वाद विलुप्ति की ओर है तथा उसे मानने को कोई बाध्य भी नहीं है अतः प्राचीन प्रसंगों का उल्लेख तत्कालीन परिस्थिति को समझने तक तो समझ में आता है, पर उनका प्रयोग आज के समाज को गरियाने के लिए, राजनीतिक निहित स्वार्थ या विदेश प्रेरित संगठनों के द्वारा करना उचित नहीं है।

आज की परिस्थिति में बाबा साहब के कालजयी मार्गदर्शन के स्मरण तथा सकारात्मक अम्बेड़कर जी की प्रस्तुति समस्त समाज को 'एकात्म राष्ट्र' के रूप में बाँधने वाली होगी।

बाबा साहब का वंदन करने वाला एक बड़ा जन–समुदाय देश में है, यह उनकी महानता के पुण्य–स्मरण का ही प्रतीक है। भारत में राजनेता अपने जीवन काल में ही मूर्तियाँ खड़ी कर लेते हैं, कि बाद में कोई लगाने वाला होगा कि नहीं। दिल्ली में यमुना के किनारे सरकार ने अनेक लोगों की समाधियाँ बनाई हैं। इन समाधियों पर स्वयं की प्रेरणा से, पैसा खर्च कर, लम्बी यात्रा कर कोई जाता है, यह अज्ञात है। सरकारी खर्च से ही समाधि दर्शन के कार्यक्रम हम दूरदर्शन पर देखते हैं। तब हमें शून्य से सृष्टि कर अपने को महामानव, युग–पुरूष तक ऊपर उठाने वाले इस व्यक्ति की महानता का अनुभव होता है जिनकी सम्भवतया सर्वाधिक मूर्तियाँ देश भर में ही नहीं तो कोलाम्बिया विश्वविद्यालय के द्वार पर भी गर्व के साथ जिनकी प्रतिमा खड़ी है, जिनकी चैत्य भूमि स्थित समाधि पर 6 दिसम्बर को श्रद्धा सुमन अर्पित करने प्रतिवर्ष लगभग बीस लाख से अधिक लोग जुटते हैं, करोड़ों लोग अपने को जिनका अनुयायी बताने में गर्व का अनुभव करते हैं, लाखों लोग हैं जिनके परस्पर अभिवादन का सम्बोधन ही 'जय भीम' बन गया है, हिस्टरी टी.वी.–18 और सी.एन.एन. आई बी.एन. द्वारा अगस्त 2012 में किए गए ई–सर्वेक्षण में गाँधी जी के बाद महानतम भारतीय के लिए सर्वाधिक मत प्राप्त करने

वाले बाबा साहब अम्बेड़कर हैं।

30 अगस्त 2006 को नई दिल्ली के हिन्दी भवन में 'समरसता के सूत्र' ग्रंथ का लोकार्पण कार्यक्रम हुआ। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध मराठी कवि, दलित पेंथर के संस्थापक अध्यक्ष, पदम्श्री श्री नामदेव ढसाल, जिनके लिए प्रख्यात नोबल पुरूस्कार विजेता श्री वी.एस. नायपाल ने अपनी पुस्तक 'ए मिलियन म्यूटिनीज नाउ' में एक पूरा अध्याय समर्पित किया है, ने अपने भावपूर्ण उद्‌बोधन में कहा था– ''मैं डॉ. अम्बेड़कर को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने हमारा दर्जा जानवर से उठाकर इंसान के समान किया। डॉ. अम्बेड़कर न होते तो हम आज भी जानवर जैसे ही रहते। ......यद्यपि बौद्ध लोग पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते, हिन्दू धर्म करता है, तथापि इस विश्वास के अनुसार यदि बाबा साहब पुनः जन्म लेते हैं तो हमारे जैसे कितने ही लोग अपनी चमड़ी की जूतियाँ बनाकर उनके पैरों में डाल देंगे, क्योंकि डॉ. अम्बेड़कर के कारण हम आज सम्मानजनक अवस्था में हैं।''

बाबा साहब की इस महानता को एक ब्राह्मण श्रीधर भास्कर वर्णेकर रचित भीमाष्टकम् के अंतिम श्लोक से नमन करते हैं–

अनग्रयजन्माऽपि तु योऽग्रजन्मा
निषिद्धधर्मोऽपि तु धर्म्यकर्मा।
अभीमधामाऽपि तु भीमनामा
तत्राऽऽदरान्मे शतशः प्रणामा।।8।।

–जो जन्म से अग्रजन्मा नहीं था, तो भी जिसका जीवन अग्रगण्य था, धर्मशास्त्र के कर्म का निषेध किया, फिर भी जिसके सारे कर्म धर्मयुक्त थे, जिसका धाम भीम नहीं था पर जिसका नाम भीम था, उसके प्रति मेरे शतशः प्रणाम्।

सन्दर्भ ग्रंथः–

1. डॉ. अम्बेड़कर और सामाजिक क्रांति की यात्रा –दन्तोपंत ठेंगड़ी।
2. सामाजिक न्याय एवं डॉ. साहब आम्बेड़कर– रमेश पतंगे।
3. संघर्ष महामानव का–रमेश पतंगे।
4. डॉ. अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व –डॉ. डी.आर.जाटव
5. Dr. Baba Saheb Ambedkar- Dhananjay Keer
6. डॉ. अम्बेडकर सामाजिक विचार एवं दर्शन सम्पादक– डॉ. नरेन्द्र जाधव
7. राष्ट्र–पुरूष बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेड़कर संकलनकर्ता–डॉ. कृष्णगोपाल, श्री प्रकाश।
8. सामाजिक समरसता–संघ का व्यापक दृष्टिकोण –के.सूर्यनारायण राव
9. तथागत और श्री गुरूजी –रमेश पतंगे।
10. डा. बाबा साहब आंबेडकर – बसंत मून